रु॰ 25.00

अंक 19

जुलाई 2001 – दिसम्बर 2001

चन्द्रताल

हिमाचल प्रदेश का साहित्यिक-सांस्कृतिक त्रैमासिक

हिमाचल की देव-परम्पराएं

भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के अन्तर्गत संख्या 65373/94 द्वारा पंजीकृत

संस्थापक
स्वंगला एरतोग,
लाहुल-स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु
सोसाईटी (रजि०) संख्या ल स/42/93
सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21, 1860.

संपादक
सुश्री डॉ० छिमे शाशनी

उप संपादक
बलदेव कृष्ण घरसंगी

संपादकीय सलाहकार
आचार्य प्रेम सिंह शौण्डा
बिशन दास परशीरा

सम्पर्क:
संपादक - चन्द्रताल
पोस्ट बॉक्स 25, मुख्य डाकघर ढालपुर
कुल्लू-175101 (हि०प्र०) फोन: (01902)-66331

अधिकृत एजेंट :
केलंग
श्री राम लाल, राम लाल की हट्टी
(शिव मन्दिर के पीछे), अप्पर केलंग, लाहुल-स्पीति

उदयपुर
श्री शिव लाल, शिवा जनरल स्टोर,
निकट मृकुला देवी मन्दिर, उदयपुर, लाहुल-स्पीति

विपणन प्रबन्धक
श्री राकेश शर्मा

चन्द्रताल त्रैमासिक सहयोग राशि:
वार्षिक : एक सौ रुपये
एक प्रति: पच्चीस रुपये

पत्रिका पूर्णत: अव्यावसायिक तथा संपादन व प्रबन्धन अवैतनिक है।

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा, नमन, अ०बा० कुल्लू से टाईप सैटिंग तथा मुद्रित एवं नीरामाटी, कुल्लू, हि०प्र० से प्रकाशित।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, उनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

आवरण
सौजन्य : हिमालयन वैब साईट्स, घुड़दौड़, कुल्लू
मुख पृष्ठ : कुल्लू दशहरा
देव-पूजा, मलाणा
छेन्नी कांठी, बंजार

क्रम

संपादकीय 2

पाठकीय 3

कविता
आतंकवादी — *अंशुमाला ठाकुर* 4
सब खत्म है — *गणेश 'गनी'*
ऐ दोस्त तुझे सलाम — *देवेन्द्र कुमार* 5
तुम और मेरी कविता — *शेखर*

कसौटी 6
आखिर यह तो होना ही था — *बलदेव घरसंगी*

लोक गाथा 7
घुरे 'तप-त्याग का' — *आचार्य प्रेम सिंह 'शौण्डा'*

क्षेत्रीय दृष्टि
'खमरण्ड्रि': उपहार नहीं लम्बी अवधि का ऋण — *सतीश कुमार 'लोप्पा'* 10

इतिहास
लाहुल निवासियों की कुल्लू राजदरबार में चाकरी — *मौलू राम ठाकुर* 11

सरोकार
दोहरी नागरिकता का असमंजस
एक राह तो चुननी ही पड़ेगी — *बलदेव कृष्ण घरसंगी* 15

बहस
दुल्हन ही दहेज — *डॉ. शकुन* 16

हिमांचल की देव-परम्पराएं
हिमाचल में देवी-देवताओं का अवतरण — *डॉ. सूरत राम* 18
प्राचीन भोट साहित्य में शिव-पार्वती की कथा — *के. अंगरूप 'लाहुली'* 22
कुलूत जनपद में अप्सराओं और नागों का वर्चस्व — *तेज राम नेगी* 24
गाथा के रूप में गाई जाने वाली गूगा कथा — *किशोरी लाल शर्मा* 26

बागवानी
लाहुल घाटी में सेब की खेती की सम्भावनाएं — *डॉ. जयन्त कुमार* 30

आकलन
अफगानिस्तान के गृह युद्ध का बामियान की प्राचीन विशाल बुद्ध मूर्तियों पर काली छाया — *छेरिंग दोरजे* 32

संपादकीय

परम्परा और विरासत किसी जाति या क्षेत्र विशेष के लोगों की अस्मिता एवं पहचान होती है; यही उसकी जीवन्तता का द्योतक होता है। हिमाचल प्रदेश की भी अपनी सांस्कृतिक धरोहर के कारण अन्य क्षेत्रों से एक अलग पहचान है। यह धरोहर लोकगीतों और लोकगाथाओं के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है। लोक जीवन के विभिन्न पहलुओं की जानकारी का यह स्रोत है। यही वह माध्यम है जिस से क्षेत्र विशेष के वातावरण, परिवेश, सामान्य जनजीवन का स्वरूप, प्रकृति और मानव के बीच का सामंजस्य, जीवन के संघर्ष, हास-परिहास का पता चलता है। ये मौखिक साहित्य लोक जीवन के दर्पण कहे जाते है। जहां पेड़-पौधे, नदी-नाले, पर्वत-घाटी, खेत-खलियान सब जीवन्त होकर संवाद करते हैं; कोमल भावनाएं साकार होकर बोलती सी जान पड़ती है। ये गीत और गाथाएं लोक साहित्य के अक्षय भण्डार हैं, जहां सांस्कृतिक चिन्तन की अक्षुण्ण धारा प्रवाहित रहती है। धार्मिक विश्वास, अनुष्ठान, जादू-टोना सभी लोकसंस्कृति के आधार हैं। हिमाचल की लोक संस्कृति मन्दिरों के इर्द-गिर्द परिभ्रमित होती है। हर गांव का अपना ग्राम देवता होता है। ग्राम देवता गांव के सम्पूर्ण क्रिया कलापों के अधिष्ठाता होते हैं। हर शुभ कार्य को आरम्भ देवता की पूजा से होती है। देवी-देवताओं पर आडेग विश्वास के कारण ही इसे देव भूमि नाम से अभिहित किया गया है। वैसे तो देवी-देवताओं के पूजने की रीति समस्त भारत में है, परन्तु इस प्रदेश में यह परम्परा अटूट श्रद्धा और विश्वास के साथ आज भी विद्यमान है।

इस अंक में जहां लोकगाथा और देवपरम्परा के माध्यम से परम्पराओं की सनातनता को दर्शाया गया है, वहीं 'खमरण्ड्री : उपहार की लम्बी अवधि का ऋण' और 'दुल्हन ही दहेज' में विशेषकर लाहुल के नारी समाज में उठ रहे जवलन्त प्रश्न को तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रथम लेख में उपहार से जुड़ी परम्परा की विसंगति पर प्रकाश डाला गया है। यह कैसी विडम्बना है, उपहार; जो हमारी आत्मीयता, स्नेह और सम्बन्धों की प्रगाढ़ता का प्रतीक माना जाता है, कालान्तर में वही कर्ज़ बनकर डसता है; जिससे भावनाएं कुण्ठित हो जाती हैं, सम्बन्धों में दरार पड़ जाती है। 'दुल्हन ही दहेज' में लाहुली समाज में बढ़ रही दहेज की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। प्रदर्शन की प्रवृत्ति किस प्रकार दहेज प्रथा को प्रोत्साहित कर रही है, इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। आने वाले समय में यह भयंकर बीमारी का रूप धारण कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं। इतर समाज जिस प्रथा से निजात पाने के लिए प्रयत्नशील है, उसे हम दिन प्रतिदिन बढ़ावा दे रहे हैं। अभी समय है कि वक्त रहते इस दहेज रूपी कैंसर को फैलने से रोका जाए, अन्यथा भविष्य में उग्र रूप धारण कर सब को अपनी चपेट में ले सकता है। आज इन समस्याओं के सम्बन्ध में सकारात्मक कदम उठाने की आवश्यकता है। बदलती हुए परिस्थितियों में ज़रूरतें भी बदलती हैं, प्राथमिकताओं का क्रम एवं आग्रह भी। अतः समय के साथ कदम मिलाकर चलने के लिए जहां परिवर्तन आवश्यक है वहीं अच्छी परम्पराओं को साथ लेना भी।

संपादक

अंक 18 की सभी रचनाएं मिलते ही पढ़ डाली थीं। लेकिन प्रतिक्रिया लिखने के लिए आज ही समय मिल पाया। कविता ''दर्शे के फूल'' अति सुन्दर है। कवि ने सुन्दर शब्द-चित्रों द्वारा पहाड़ की ''अभिव्यक्ति की व्याकुलता'' को पाठक के सामने रखा है। एक परिपक्व रचना। एक परिपूर्ण कविता। कविता ''भूल'' भी अच्छी लगी। ''लिङ का तीर'' पढ़कर बचपन के उन दिनों की याद आई जब देर रात तक ग्यापो केसर की कथा बड़े चाव से सुना करते थे। क्या इस पूरी गाथा को सीरीज़ में प्रकाशित नहीं किया जा सकता? ''उधार की सामाजिक चेतना'' प्रभावशाली है। संगोष्ठियों पर रिपोर्ट भी अच्छे लगे। इन संगोष्ठियों के चुनिन्दा पत्र अगर 'चन्द्रताल' में छपते तो और भी अच्छा होता।

सतीश की कोई नई रचना काफी अर्से से नहीं आई। अगले अंक में कोई उम्मीद कर सकता हूं? पत्रिका के ज़िन्दा रहने के लिए मैं समझता हूं कि आर्थिक व सामाजिक समस्याओं पर गम्भीर लेख आवश्यक हैं। हम अभी तक 'विमर्श' का माहौल नहीं पैदा कर पाए हैं। गम्भीर समस्याओं और विषयों से जाने-अनजाने कतरा जाते हैं। पूर्वाग्रहों से हटकर हमें स्पष्ट एवं निष्पक्ष बहसें शुरु करनी होंगी, क्योंकि 'चन्द्रताल' ही ऐसे कार्य के लिए एक मात्र मंच है। अपनी बात कह देने भर से एक लेखक के कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। उस बात पर आगे विमर्श हो, और उसे जांच-परख एवं परिष्कार के माध्यम से समाज में या जीवन में उपयोग करने की सम्भावना तलाशी जाए, वही लेखन का अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए।

बात शायद कुछ बड़ी हो गई लेकिन मैं समझता हूं कि यह अनिवार्य है। पृष्ठ भर देने मात्र से पत्रिका का उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। हमने एक महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारी ली है; रुकावटें बहुत हैं, कठिन कार्य है, लेकिन फिर भी कोशिश की जा सकती है। इतनी मेहनत, ऊर्जा, इतना समय और धन हम खर्च कर ही रहे हैं तो क्यों न हम इस कार्य को गम्भीरतापूर्वक करें?

-अजेय

लेखक बन्धुओ,

जैसा कि आप को ज्ञात है लाहुल स्पीति की लोक कला, साहित्य व संस्कृति को सही रूप में सामने लाने व लुप्त होती लोक विधाओं को संरक्षित करने व पुनर्जीवित करने तथा आस-पास की अन्य हिमालयी संस्कृतियों के साथ तुलनात्मक विवेचना द्वारा आत्म परिष्कार आदि के उद्देश्यों को लेकर "चन्द्रताल" का प्रकाशन आरम्भ किया गया था। सभी लेखक बन्धुओं से आग्रह है कि अपने हर प्रकार के लेख व कोई भी साहित्यिक रचना "चन्द्रताल" में प्रकाशनार्थ भेज कर हमारे इस अनुष्ठान को आगे बढ़ाने में अपना सहयोग दें। हिमाचल के सभी लेखक बन्धुओं से निवेदन है कि वह अपने इलाके की संस्कृति से सम्बन्धित लेख "चन्द्रताल" के लिए भेज कर हमें प्रोत्साहित व अनुगृहीत करें। लेख भेजते समय कृपया इस बात का विशेष ध्यान रखें कि लिखाई साफ-साफ हो जिसे आसानी से पढ़ा जा सके, लिखते समय पंक्तियों के बीच डबल दूरी दें अर्थात् एक पंक्ति छोड़ कर लिखें तथा पन्ने के एक ही ओर लिखें क्योंकि दोनों ओर लिखे पन्ने मुद्रण प्रक्रिया में विघ्न पैदा करते हैं। "चन्द्रताल" के पृष्ठ हर प्रकार के लेखकों व पाठकों के लिए खुले हैं। हमारा आग्रह है कि आप लोग ज़रा भी न हिचकें। पाठकगण हमें अपनी प्रतिक्रिया से अवश्य अवगत कराते रहें।

-संपादक

बधावा

श्री विनीत बृजलाल को केन्द्रीय लोक सेवा आयोग, नई दिल्ली द्वारा आयोजित सिविल सर्विसिज़ में 22वां स्थान प्राप्त करने पर उन्हें 'चन्द्रताल' परिवार की ओर से हार्दिक बधाई! आपसे आने वाली युवा पीढ़ी को नई दिशा मिलेगी, ऐसी हमारी आशा है।

आतंकवादी

"सपने टूटे है शीशे के प्याले नहीं टूटे
मां-बाप के लहू-पसीने की बूंदें
अपनी कीमत मांगती है .... और
हम लाचार खड़े है
शीशे के प्याले नहीं टूटे हमारे दिल टूटे है।
आंखों पे पहरे लगे आंखों के
जुबान मीठी छुरी सी दिल लुभाती है
मरहम नमक-मिर्च है
ज़ख्म रिसते है मगर रोते नहीं
क्या इसलिए हम आतंकवादी है?"
"शायद नहीं - यह पूरा सच नहीं है।
हम ढाले गए है
बेतरतीब सांचों में
हमारे अंदर घुस गया है
एक आतंकवादी ....
जो हमारे हाथों से कर्म करता है
हम हो गए है है रबड़ के पुतले
ज़रा से ताप से पिघलते है
आपस में उलझते है
बेमतलब मिटते है
हम हो गए है ठूंठ चौराहे का
जो जुल्म ढोता है।

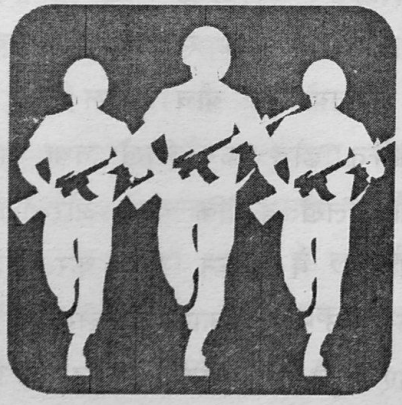

सारा समाज हमसे आतंकित
हमने रौंदी मां-बाप की अस्मिता
हमने अपने भाइयों का खून पीया है
हमने खड़ी की हकों की दीवारें
हमने उठाए प्रश्न उत्तर-दक्षिण के
हमने खेली खून की होली
धरती-आसमान कांपते हैं हमारे आतंक से
इसलिए हम आतंकवादी है।"
"हां, इसलिए हम आतंकवादी है।"
"पर मेरी तुम्हारी समस्या एक
हमारे सपने टूटे है ....
लेकिन मेरे भाई
वह मानव न मानव
जो दान में पला
बंजर में उगाई जिसने
केसर की खेती
मानव वह विरला एक
शिथिलता न तेरा मेरा कर्म
मिला हमें संघर्ष - सौभाग्य है।
कुछ तुम्हारी बूंदें बहें श्रम की
कुछ मेरे आंसू बहें स्नेह के
यह धरती फूली न समाएगी
आ बो दें कुछ श्रम के बीज
धरती नम है ....
न मै उत्तर की
न तुम पूर्व के
हम हिमालय के सुत्त-सुत्ता
हम आतंकवादी नहीं
हम मानवतावादी है।"

- अंशु माला ठाकुर

सब खत्म है!

अब गांव में प्यार नहीं बसता
सांझ को पनघट पे कौतूहल नहीं मचता
घर के आंगन में कोई बच्चा नहीं खेलता
और अब छत पर कोई बूढ़ा कहानी नहीं सुनाता।

अब चूल्हे पे वो मक्की के मोटे-मोटे रोट नहीं बनते
ताज़ी फसल के जौ के सत्तू नहीं बनते
दही से भरे कांसे के वो कटोरे नहीं मिलते।

अब कहीं मक्की के खेतों में भुट्टे नहीं भुनते
फसल काटते वक्त कोई गीत नहीं गूंजते
लोग इक-दूजे का दु:ख दर्द नहीं बांटते
और तीज-त्यौहारों में मन से गले नहीं लगते।

शायद गांव भी शहर बनना चाहता है
इसलिए हर एक भाग-दौड़ में रहता है
प्यार, दोस्ती, रिश्ते सब भूल जाता है
और यही तो ज़िन्दगी के मा'ने हैं, इन्हीं से दूर भागता है।

-गणेश 'गनी'

ऐ दोस्त तुझे सलाम

याद करके उनकी शहीदी जो शहीद हुए करगिल में
अश्रु अब भी आते हैं तड़फ अब भी है दिल में
मर मिटेंगे मार मिटाएंगे पाक के उन दरिन्दों को
मैत्री की आड़ में बनाकर घोंसला जो छुपते हैं बिल में

तोड़ेंगे दम्भ पाक का दिल में जब तक ग़रूर बाकी है
अंधेरा होने न देंगे जब तक खुदा का नूर बाकी है
शोहरत की मंज़िल पे पहुंचा देंगे तुझे ऐ हिंद
आगे ही बढ़ते जाएंगे जब तक हिंद में वीर बाकी हैं।

खुशनसीब हूंगा यदि एक रो, मेरी रो का, तेरी रो में मिले
तेरी कसम बदला लूंगा यदि हिन्द को दोबारा धोखा मिले
तेरी मां बच्चे घर परिवार की कसम ऐ शहीद
मिटा दूंगा हस्ती पाक की यदि मुझे मौका मिले।

रो जाते हैं अब भी जब तेरी याद आती है
पाक की वो करतूत अब भी दिल दहलाती है
तू तो मर कर अमर हो गया ऐ मेरे दोस्त
आंसू कैसे रोकूं वो चोटी अब भी तेरी कहानी सुनाती है।

दिल तड़फ जाता है जब भी तेरी तस्वीर देखता हूं
यह मैं या मेरा दिल जानता है, आंसू कैसे रोकता हूं
कैसे कहूं तेरे बिन दिल का हाल कैसा है
जुबां लड़खड़ाती है तेरी याद में जब भी बोलता हूं

जब घर परिवार गांव में सन्नाटा था वे दिन अब भी याद हैं
वो मृत शरीर तिरंगे में लिपटा हुआ अब भी याद है
ऐ सखा तू फिर वैसा ही इस दुनिया में आ जा
तेरे बिन दिल सूना और ज़िन्दगी वीरान है।

- देवेन्द्र कुमार शर्मा

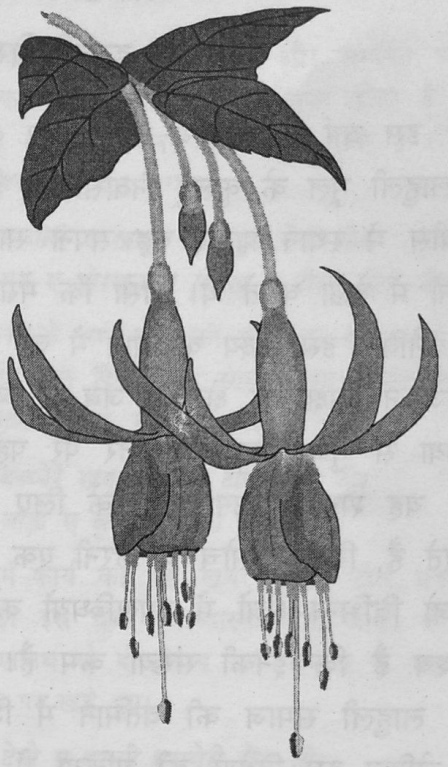

तुम और मेरी कविता

तुम पूछती हो
कविता कैसे लिख लेता हूँ
अब तुम्हें कैसे समझाऊँ
कविता मैं नहीं लिखता
कविता तो तुम खुद लिख जाती हो
'मेरे जीवन में'
जब कल-कल सी बहती हो
एक कविता सी चलती हो
कविता सी खिलखिलाती हो,
तुम्हारा 'स्नेह' तुम्हारी 'बातें'
यह सब खुद दे जाती है
मुझे 'कविताएं'
और मैं...
मैं कविता नहीं लिखता
मैं तो बस 'रख' दिया करता हूँ
कुछ शब्दों के ढेर में
...'तुम्हें'

- शेखर

आखिर यह तो होना ही था....

लेकिन इसकी निरन्तरता को तो बनाए रखना ही होगा

इस वर्ष के केन्द्रीय लोक सेवा आयोग द्वारा ली गई भारतीय प्रशासनिक सेवा की परीक्षा में लाहुली मूल के कुल्लू निवासी श्री विनीत बृजलाल सुपुत्र श्री बृजलाल ने इस परीक्षा में प्रथम पच्चीस में स्थान पाकर वह सपना साकार कर दिया जो 80 व 90 के दशक में दूसरे सिर्फ सपनों में देखा करते थे। जैसा कि मेरा पहले भी मानना था कि आने वाले समय में ऐसा होगा ही। लेकिन इस लक्ष्य को पाने में जो समय लगा वह भी एक दम सटीक रहा, क्योंकि लाहुली समाज ने शिक्षा के क्षेत्र में जब से व्यापक कदम रखा तब से लेकर एक क्रमिक विकास की प्रक्रिया से गुज़र कर इस स्तर पर पहुंचे हैं, जो कि एक विशेष उपलब्धि है।

यह शताब्दी उन लोगों के लिए है जो पराक्रमी अर्जुन की तरह निशाना सिर्फ लक्ष्य पर साधते हैं, जिनकी सोच व करनी एक ही लक्ष्य पर रहती है। आज ऐसे बहुत से लाहुली युवा हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों को पाने के लिए एकचित्त लक्ष्य साधे हुए हैं। हां, इतना अवश्य है कि इनकी संख्या कम है। लेकिन वे सफल होंगे, इसमें कोई संदेह नहीं।

लाहुली समाज की वर्तमान में शिक्षा पर प्रति व्यक्ति पर जो निवेश है वह सराहनीय है। लेकिन इस निवेश की प्रक्रिया में कुछ विषयों की अनदेखी भी हो रही है। सबसे पहली बात, कि शिक्षा को हमेशा नौकरी के परिप्रेक्ष्य में ही देखने से शिक्षा के मूल भाव का अवमूल्यन ही हुआ है। इसके अतिरिक्त संयुक्त परिवारों के विघटन के चलते सामाजिक व नैतिक मूल्यों में भी बदलाव आया है, जिसका सीधा प्रभाव नई पीढ़ी पर पड़ रहा है। वह समाज के बहुत से उच्च मूल्यों से वंचित रह रहे हैं। इसके अतिरिक्त नव धनाढयता, एकाकी परिवार और पैसे की अर्थव्यवस्था के चलते नई पीढ़ी की नैतिक, सामाजिक व पारिवारिक मूल्यों में भी बदलाव आया है। इन सब के चलते अच्छी शिक्षा मिलने के उपरान्त भी आज नई पीढ़ी दिशाहीनता, नशे की लत् व उत्पीड़ित मानसिकता के बोझ को ढो रही है। आज ज्यादा संख्या उन युवाओं की है जो जनजातीय व पश्चिमी सभ्यता की दोहरी मानसिकता में फंसे हुए हैं। वेशभूषा से अमेरिकी दिखने वाले ये युवा सोच में असमंजस की परछाई के साथ ही जी रहे हैं।

ऐसे में श्री विनीत बृजलाल जैसे व्यक्तित्व अवमूल्यन की ओर जा रहे समाज में एक नई स्फूर्ति पैदा तो करते ही हैं, साथ में एक नए विश्वास के उद्भव को भी हवा देते हैं। कोई भी समाज जब उन्नति की ओर अग्रसर होता है तो उसका श्रेय उस समाज के विचारकों, सही नेतृत्व, लक्ष्य प्राप्त करने व उत्पादकता और समग्र विकास करने की क्षमता को जाता है। इन सब का एक बिन्दु पर एकत्र होना क्या यह सम्भव है? ...हां। लेकिन इसके लिए समाज में सब स्तर पर सही दिशा में चिन्तन के साथ एकाग्र कर्मशीलता की आवश्यकता है।

- बलदेव कृष्ण घरसंगी

घुरे - 'तप-त्याग का'

- आचार्य प्रेमसिंह शौण्डा

इस घुरे में तप और त्याग की मूर्ति रानी बंचेला की गाथा है। यह किस देश की राजकुमारी है और किस राजा की रानी; इस का उल्लेख घुरे में स्पष्ट नहीं है। परन्तु इसके त्याग और तपस्या की चर्चा चारों ओर होने लगी तो परम साधक गुरु गोरखनाथ स्वयं पता लगाने के लिए बंचेला रानी की प्रौढ़ी गए और वेश बदल कर परीक्षा लेने लगे। घुरे इस प्रकार है--

अंचेला ए बंचेला दुये सोदुरू बैणी जी
अंचेला ए राणी गोड़ा बंगड़ा व्यायेला
बंचेला ए राणी गडूदेला व्यायेला।।

अंचेला और बंचेला दो सुशील और सुन्दर सहोदर (सग्गी) बहनें थीं। युवा अवस्था में पहुंचने पर अंचेला का विवाह गोड़ा-बंगड़ा में हुआ और बंचेला गडूदेला में ब्याही गई।

बंचेला ए राणी पूतुरू फाला नयी जी।
पाधा ए पण्डीता शदी कारी आणी जी।।

वैवाहिक जीवन सुखद था। पर्याप्त समय बीत गया, परन्तु रानी बंचेला को पुतुरु (पुत्र) अर्थात् सन्तान का फल नहीं मिला। इस पर विद्वान कुलगुरु (पाधा) को सन्तान के न होने के कारण को जानने के लिए बुला कर लाया गया।

हेरा ए पण्डीता पोथी पातीरी हेरो जी।
बंचेला ए राणी पुतुरू फाला नायीं जी।।

हे विज्ञजन! यह देखो। बंचेला रानी को पुत्र फल नहीं प्राप्त हुआ है। इस लिए आप शास्त्रग्रन्थ और कर्मों के फलादेश को अच्छी तरह देख कर बताएं कि इतना समय बीत जाने पर भी रानी बंचेला सन्तान सुख से वञ्चित किस कारण से है।

पाधा ए पण्डीता पातीरी हेरी जी।
पातीरी ए अन्दूरे करमे फाला नायी जी।।

विद्वान गुरु ने बंचेला रानी की जन्म-पत्री को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि और ध्यान से देखा। "जन्म-पत्री के अन्दर पूर्व जन्म के कर्मों के कारण तुम्हें पुत्र-फल नहीं है," यह गुरु ने बताया।

पोथी ए अन्दूरे धरमे फाला होन्दे जी।
बंचेला ए राणी धरूमा चालाय जी।।

पर गुरु ने यह बताया कि धर्म शास्त्र में विधान दिया है कि यदि निष्ठा और समर्पित भावना से धर्म-कर्म किया जाए तो पुत्र फल होता है। इस प्रकार के समाधान मिलने पर बंचेला रानी ने धर्म के कार्य में अपना जीवन लगाया।

धरूमेरी ए खबूरा दूरा दूरा गेया जी।
गुरु ए गोरखुनाथा गोरखु ए टीला होन्दे जी।।

रानी के धर्म कार्य की चर्चा दूर-दूर स्थानों तक होने लगी। उन दिनों परम साधक गुरु गोरखनाथ जी गोरखु नामक टीले में रहते थे।

धरूमेरे खबूरा गोरखु टीला भुये जी।
जोड़ी ए चेला बंचेलेरी प्रौढ़ी जी।।

धर्म-कार्य की यह खबर गोरखु टीले तक भी पहुंच गई। इस चर्चा की वास्तविकता जानने के लिए गुरु गोरखनाथ के दो शिष्य रानी बंचेला के महल के मुख्य द्वार पर खड़े हुए।

देयो ए धरामी धरूमेरी सेरा जी।
बंचेला ए राणी धरूमेरी सेरा दिया जी।।

राजमहल के द्वार पर खड़े हुए गोरखनाथ के शिष्यों ने आवाज़ लगाई कि, "हे धर्म के कार्य में लगी रानी! हमें धर्म का सेर अर्थात् दान का अन्न दो।" रानी बंचेला ने उन्हें यथेष्ट अन्न का दान किया।

देयो ए धरामी सोने दाना लोड़ी।
बंचेला ए राणी सोने दाना दिया जी।।
देयो ए धरामी रूपे दाना लोड़ी।
बंचेला ए राणी रूपे दाना दिया जी।।
देयो ए धरामी कपूड़ेरी दाना लोड़ी।
बंचेला ए राणी कपूड़ेरी दाना दिया जी।।

शिष्यों ने सोना, चान्दी और कपड़ों के दान की मांग की और रानी ने उन्हें तत् तद् वस्तु दे कर सन्तुष्ट किया।

जोड़ी ए चेला गोरखु टीला गया जी।
गुरु ए गोरखु नाथा खबूरा ना पूछे।।

सन्तुष्ट हुए शिष्य गोरखु टीला चले गए। तब गुरु गोरखनाथ ने उनके अभियान का समाचार पूछा।

जोड़ी ए चेला ठः ठाना भुये जी।
बंचेला ए धरूमा आन्ता न पारे।।

दोनों शिष्य आश्चर्य-चकित हो गए थे। गुरु के पूछने पर उन्होंने कहा कि बंचेला रानी के धार्मिक कार्यों का न अन्त, न वार पार है।

गुरु ए गोरखुनाथा बंचेलेरी प्रौढ़ी जी।
गुरु ए गोरखुनाथा साधू रे भेषे।।

गुरु गोरखनाथ साधु के वेश में स्वयं ही परीक्षा लेने के लिए रानी बंचेला की प्रौढ़ी गए।

देयो ए धरामी धरूमेरी सेरा।
बंचेला राणी धरूमेरी सेरा दिया जी।।
देयो ए धरामी दुधे दाना लोड़ी।
बंचेला ए राणी दुधे दाना दिया जी।।
देयो ए धरामी सोने दाना लोड़ी।
बंचेला ए राणी सोने दाना दिया जी।।
देयो ए धरामी कपूड़ा दाना लोड़ी।
बंचेला ए राणी कपूड़ा दाना दिया जी।
देयो ए धरामी घोड़े दाना लोड़ी।
बंचेला ए राणी घोड़े दाना दिया जी।।

गुरु गोरखनाथ ने कहा "हे धार्मिक स्त्री! दान-धर्म का अन्न मुझे दो।" रानी ने नित्य प्रति की तरह प्रसन्न हो कर अन्नदान किया। इस प्रकार दूध, सोना, कपड़ा, घोड़ा देने के लिए कहा और रानी वे वस्तुएं और घोड़ा दान में दे कर गुरु गोरखनाथ की परीक्षा में उत्तीर्ण हुई। गुरु ने सोचा कि ये वस्तुएं इसके पास हैं, इन्हें देने में उसे अधिक कष्ट नहीं। बड़ी प्रसन्नता के साथ उदारचित्त से दान किया। पर इतने से गुरु गोरखनाथ सन्तुष्ट नहीं हुए। इस लिए -

गुरु ए गोरखुनाथा कोढ़ि भेषा किया।
कुणू ए चरेला कुणू ए मेरे स्वदेला।।

गुरु गोरखनाथ ने अपने आप को कोढ़ी के रूप में उपस्थित किया। तब रानी के सन्मुख जा कर कहने लगे कि मैं रोग-ग्रस्त हूं। मुझ दीन-हीन की कौन परिचर्य (सेवा) करेगा और कौन मेरी सफाई करेगा।

बंचेला ए राणी कोढ़ी सेवाना किया जी।
सेवा ए कीती भवैं दुःखा पेया जी।।

बंचेला रानी ने रोगी की सेवा करना भी धर्म समझा। इसलिए कोढ़ी की सेवा प्रसन्नता के साथ की। भले ही यह सेवा कष्ट दायक थी। पर रानी ने बड़े सरल भाव से अपनी दिन चर्या समझ कर एक चित्त हो कर सेवा का कार्य किया।

शिरे ए दीती बौहारा जीहे दीती चौका।
गुरु ए गुरखुनाथा प्रगूड़ा ना भुये जी।।

बीमार के कोढ़ का ज़ख्म दिन-ब-दिन बिगड़ता गया। पीक और गंदा खून रिसने लगा। घाव बहुत नाजुक हो गया। कपड़े से सफाई करने से असह्य पीड़ा होने लगी। ये सब नारी हृदय से सहन नहीं हो सका। संवेदनशील तथा सेवा-परायण रानी बंचेला किसी प्रकार की परवाह किए बिना अपनी बारीक और कोमल केशराशि से ज़ख्म की गन्दगी नित्यप्रति साफ करती थी। रोगी की पीड़ा को बहुत ही निकट से देख रही थी और महसूस कर रही थी। सेवा कार्य में समर्पित उसे घृणा नाम की चीज़ छू तक नहीं गई थी। पीड़ा से निजात दिलाने के लिए रानी बंचेला रोगी के ज़ख्म को जीभ से साफ करती थी। इससे गुरु गोरखनाथ अचम्बित हो गए। उसे उम्मीद नहीं थी कि रानी बंचेला सेवा कार्य में इस सीमा तक जा सकती थी। गुरु गोरखनाथ तत्काल काढ़ी के वेश को त्याग कर अपने सही रूप में प्रकट हुए और प्रसन्न होकर अपना परिचय दिया।

बंचेला ए राणी गुरू सेवाना किया जी।
गुरु ए गुरखुनाथा बोलून्दे लागी।।

यद्यपि वेश बदल कर और कोढ़ी बन गुरु ने रानी के साथ छलावा किया। तथापि रानी ने निर्विकार भाव से गुरु गोरखनाथ की सेवा की। सेवा ही उसका परम धर्म था। तब गुरु बोलने लगे।

बंचेला ए राणी किजी तायें धरूमा।
गुरु ए गुरखुनाथा पूतुरू फाला नायी जी।।

हे बंचेला रानी! यह धर्म का कार्य किस लिए कर रही है? उत्तर में रानी ने कहा - "हे गुरु महाराज! विवाह किए इतना समय बीत गया है कि पुत्र-फल की प्राप्ति नहीं हुई है। इसके लिए ही धर्म-कर्म करने का बीड़ा उठाया है।"

गुरु ए गुरखुनाथा गुरखू टीले गये जी।
गुरु ए गुरखुनाथा शवे शाठा चेला जी।।

रानी बंचेला को अमुक दिन आने का आदेश देकर गुरु गोरखनाथ अपने गुरखू टीले चले गए। उनके शवे-शाठा = साठ सौ (छः हज़ार) या शवे शाठा = सौ शत (दस हज़ार) या शवे शाठा = एक सौ साठ शिष्य थे, जो गुरु के साथ वहां रहते थे। जैसे कहा

भी है - *"शवे शाठा चेला गुरखु टीला होन्दे जी।"*

बंचेला ए राणी गुरखु टीला आए जी।
अंचेला ए राणी अगे ध्याड़ी गेयी जी।।

बंचेला रानी निश्चित दिन गुरु की तपोभूमि गुरखुटीला गई। यह खबर उसकी बहन अंचेला भी जानती थी। इसलिए वह एक दिन पहले ही वहां पहुंच गई।

बंचेला ए राणी गुरखु टीला गेयाजी।
भोजाणा ए लेये गुरखु टीला गेया जी।।

गुरु के बताए हुए दिन बंचेला रानी गुरखु टीला गई। शिष्यों सहित गुरु गोरखनाथ के लिए स्वादिष्ट भोज्य पकवान साथ ले गई।

गुरु ए गुरखुनाथा नागा लोका गेया जी।
शवे ए शाठा चेला एकी नायी देखी।।

वहां यानी गुरखु टीला में पहुंचने पर पता चला कि गुरु गोरखनाथ नाग लोक चले गए। उनके दस हज़ार शिष्यों में से एक भी दिखाई नहीं दिया।

बाराय ए बरुषे जपे तापा बैठी जी।
बंचेला ए राणी नैणा कोपा बैठी जी।।

रानी यह दृश्य देख कर ठगी सी रह गई। अपने आप गुरु जी ने बुला कर भी अपने आप अदृश्य हो गए। परन्तु बंचेला रानी ने धैर्य नहीं छोड़ा। उसका संकल्प दृढ़ था और तप करती हुई बारह वर्ष तक गुरु दर्शन और पुत्र फल प्राप्ति के लिए वहीं बैठी रही। अपनी किस्मत पर वह रो उठी, आंखों में आंसू भर आए।

यहां 'नैणा कोपा बैठी जी' का अर्थ है 'आंखों में आंसू भर आए'। गाथा में जहां भी 'नैणा कोपा' शब्द आया, वहां उसका अर्थ क्रोध नहीं, आंसू है। यह प्रचलन है।

गाथा की कथावस्तु गाथा के रूप में यानी पद्य के रूप में यहीं समाप्त हो जाती है, जो अधूरा है। परन्तु जिन लोगों की गायकी में घुरे गाया जाता रहा है, उन्होंने कर्ण परम्परा से सुन कर उपर्युक्त पद्यात्मक गाथा में सामञ्जस्य बिठा कर गद्यात्मक रूप में कहानी को इस तरह पूरा किया --

बंचेला रानी गुरु द्वारा निश्चित किए दिन पर जब गुरखु टीला पर पहुंची तो गुरु गोरखनाथ ने दूर से ही उसे आते हुए देखा। गुरु ने सोचा 'यह बंचेला बहुत लालची है। इसी कारण पुनः पुत्र की कामना से आई। अन्यथा उस ने और किसी प्रकार की कामना पहले नहीं की।' हुआ यह था कि बंचेला की बहन अंचेला एक दिन पूर्व आकर बंचेला के रूप में पुत्र-फल ले गई थी। इसलिए गुरु गोरखनाथ क्रोधित होकर अपने शिष्यों के साथ अन्तर्धान होकर नागलोक चले गए।

बंचेला जब आश्रम पहुंची तो वहां गुरु और उनके शिष्यों को न पाकर ठगी सी रह गई और अपने दुर्भाग्य को कोसती रही। क्योंकि स्वयं गुरु ने बुला कर भी पुत्र-फल और उनके दर्शनों से वंचित होकर रह गई। दुःखी होकर रोती रही। परन्तु गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा और दृढ़ विश्वास के बल पर वहीं पर तपस्या करने बैठ गई। बारह वर्ष तक निरन्तर तपस्या में लीन रहीं, रोती रही। गुरु-शिष्यों के लिए लाया भोग अब भी गर्म था, धूप अब भी जगा था। पर स्वयं ध्यान में इतनी मग्न थी कि कौवे आदि पक्षी उसके शरीर से मांस नोच-नोच कर खाते रहे। इसे भी दान मान कर तपस्या के कार्य में ही प्रवृत्त रही। अन्ततोगत्वा निश्छल तथा घोर तपस्या का फल यह हुआ कि उसकी आंखों से बहती अश्रुधारा से एक बूंद टपक कर गुरु की पीठ पर पड़ी। आंसू की एक बूंद ने तेजस्वी तपस्वी साधक गुरु गोरखनाथ के शरीर पर घाव कर दिया। शक्ति और प्रभाव को देख कर गुरु ने शिष्यों को पता करने के लिए कहा कि हो न हो, गुरखु टीले पर कोई अनहोनी घटी है। दो शिष्य तुरन्त गुरखु टीले पर जाकर वहां का सारा सम्वाद ले कर लौटे। शिष्यों से पता लेकर स्वयं शिष्यों सहित ध्यान में लीन बंचेला के सम्मुख पहुंचा। क्षण भर ध्यान लगा कर वस्तुस्थिति से अवगत हुआ तो अपनी भूल पर गुरु को बहुत पश्चाताप हुआ। अंचेला और बंचेला दोनो सग्गी बहनें थीं। रंग-रूप एक सा था। बोलचाल एक सी थी। नख-शिख तक में कोई अंतर नहीं था। इसीलिए बड़ी सरलता से गुरु ने छली और कपटी अंचेला को संतान होने का वरदान दे दिया। जब वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ तो गुरु ने अपनी भूल को महसूस किया और पात्र तपस्विनी बंचेला को पुत्र-फल प्रदान किया। छल से संतान फल प्राप्त करने वाली अंचेला और उसके दोनों पुत्र-पुत्री को 'फिटकार' दिया। वे तीनों अभिशप्त हो गए। जीवन भर मुसीबतों में भटकते रहे। कभी शान्ति नहीं मिली। सत्य की जय हुई। बंचेला का घर पुत्र-फल से भर गया। सुख-शान्ति का राज रहा।□

'खमरण्ड्र': उपहार नहीं लम्बी अवधि का ऋण

-सतीश कुमार 'लांप्पा'

लाहुल की पटन घाटी के बौद्धों और गरुओं में विवाह के समय लड़की को सिर से पैर तक के सभी आवश्यक वस्त्र उपहार स्वरूप (?) देने की प्रथा है। यह उपहार दुल्हन के निकट सम्बन्धी, यथा चाचा, चाची, भाई, बहनें, बुआ, मामा, मासी आदि देते है। लोक-चलन के अनुसार इन सम्बन्धियों द्वारा वस्त्र उपहार में देने होते हैं, इसे स्थानीय भाषा में 'खम-रण्ड्र' अर्थात वस्त्र देना या वस्त्र दान कहते है। इस 'वस्त्र-दान' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जब दाता व्यक्ति की मृत्यु होती है तो उसके क्रिया-कर्म, जिसे 'सामा' कहते हैं, के अवसर पर प्राप्त-कर्त्ता स्त्री को आटा-तेल या भूने हुए गेहूं के रूप में लौटाना पड़ता है और उस सामग्री से 'कुर-कुर-मार्चु' यानि कुरमुरी तली हुई चपातियां बना कर मृतक के परलोकोत्थान के निमित्त रिश्तेदारों और ग्राम-जनों को प्रति परिवार सदस्य-संख्यानुसार दान कर दिया जाता है। यदि यह 'बरतण' लाने वाले की संख्या अधिक हो यानि कि यह दान सामग्री अधिक मात्रा में एकत्र हो जाए तो कुछ लोगों द्वारा लाई गई सामग्री गृह-स्वामी अपने लिए रख लेता है। लोकाचार यह है कि अधिक सामग्री दान की जाती है और अपने लिए कम से कम रखी जाती है। 'वस्त्र-दान' के एवज़ में जो 'बरतण' ली जाती है उसकी एक और बड़ी विशेषता यह है कि प्राप्तकर्त्ता स्त्री के गृह से किसी किस्म की आना-कानी की सूरत में (प्राय: ऐसा होता नहीं है) बाकायदा, तकाज़ा कर के लिया जाता है। बुज़ुर्गों का बताना है कि 'वस्त्र-दान' का 'बरतण' मुकद्दमा कर के भी प्राप्त किया जाता है। यही इस प्रथा का सबसे बुरा पहलू है। विवाह के दिन तो यह उपहार सा दिखता है और दाता की मृत्यु पर यह 'बरतण' बन कर सामने आता है। हरेक दुल्हन इस उपहार या 'बरतण' को प्राप्त करने के लिए बाध्य है।

प्रश्न उठता है कि ऐसी विचित्र प्रथा की स्थानीय समाज को क्यों आवश्यकता पड़ी? उत्तर बहुत सहज है। गांधी जी ने कहा था - 'गरीबी सब बुराइयों की जड़ है'। यह प्रथा भी गरीबी की ही उपज है। लाहुल से थोड़ा सा भी सरोकार रखने वाला व्यक्ति जानता है कि अतीत में यह क्षेत्र घोर गरीबी में जीता था। उस समय मृतक-संस्कार और क्रिया-कर्म आदि में यथेष्ट व्यय करने की शक्ति किसी में नहीं थी। सारे भारतवर्ष में दान की महिमा! सब जानते है, यहां कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं। एक ओर घोर गरीबी, दूसरी ओर मृतक की आत्मा के उन्नयन के लिए दान की परम आवश्यकता। क्या करे गृह स्वामी? समाज ने इस विपद के तोड़ निकाले, उन्हीं में से एक यह 'वस्त्र-दान' भी है। उस समय के लिहाज़ से बिल्कुल सही-स्टीक तोड़ था यह, मुझे इस में कोई शक नहीं। हमें उन का मनोविज्ञान समझना होगा और उनके मनो-धरातल पर बैठकर सोचना होगा। बहुत दूर न जाकर हम यदि दो या तीन पीढ़ियों पीछे तक भी जाकर उन के मन को टटोलें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि उस वक्त का 'वस्त्र-दाता' यानि भविष्य का मृतक अपनी मृत्यु और 'सामा' पर किए जाने वाले दान के बारे पूर्णत: सचेत और कभी-कभी तो सनक की हद तक सचेष्ट होता था। कई लोग जिनके वारिस नहीं होते थे या जिन्हें वारिसों पर विश्वास नहीं होता, वे जीते जी ही 'सामा' कर दिया करते थे। जीवन के उस काल में ही व्यक्ति अपनी मृत्यु पर होने वाले दान की गणना कर लेता था और तदनुरूप ही 'वस्त्र-दान' के अवसरों का सदुपयोग करता था।

यह तब का यथार्थ है। लेकिन हमें आज के यथार्थ को टटोलना है। 'वस्त्र-दान' का प्रचलन यथावत चल रहा है लेकिन दाता और प्राप्त-कर्त्ता दोनों की ही भावनाओं में आमूल परिवर्तन हो चुका है। आज एक भी विवाहिता ऐसी नहीं मिलेगी जो इस प्रथा को उचित ठहराती हो। नई पीढ़ी की दुल्हनों की तो छोड़ो, अपनी आधी से अधिक ज़िन्दगी गुज़ार चुकी विवाहिताएं भी खुलेआम इस प्रथा का घोर विरोध करती हैं। विरोध के आधार स्पष्ट हैं। उम्दा उपहार सा दिखने वाला यह 'वस्त्र-दान' उनके सिर पर एक ऐसा कर्ज़ है जो उनके खुद की मृत्यु पर भी पिण्ड नहीं छोड़ता बल्कि उनके पीछे रह जाने वाले परिजनों को चुकाना पड़ता है और वह भी तकाज़ा करके, मुकद्दमे की धमकी के साये तले। वाह री विडम्बना! तेरी भी कोई सीमा नहीं है। यह तो एक ऐसी लम्बी अवधि का ऋण है जिस पर ब्याज भी चढ़ता जाता है और उस पर तुर्रा यह कि इसे प्यारी बिटिया की विदाई पर उपहार स्वरूप दिया जाता है। मैंने ब्याज की बात की, यह सच है। इस ऋण का ब्याज गेहूं, आटा, तेल आदि के मूल्य-सूचकांक के आधार पर परोक्ष रूप से चढ़ता जाता है क्योंकि इन वस्तुओं के दाम लगातार बढ़ते ही चले आते हैं। तो परोक्ष रूप से यह ब्याज ही है। इसके विरोध का एक और आधार है 'वस्त्र-दान' में दिए गए वस्त्रों की गुणवत्ता की कमी। अक्सर सुनने को मिलता है कि 'उपहार' में दिए गए वस्त्र घटिया स्तर के निकलते हैं। इसमें भी काफी हद तक सच्चाई है। इसीलिए दुल्हनें 'वस्त्र-दान' को

....शेष पृष्ठ 14 पर

लाहुल निवासियों की कुल्लू राजदरबार में चाकरी

-मौलूराम ठाकुर

लाहुल के लोक साहित्य में लाहुल निवासियों की कुल्लू राजदरबार में चाकरी की अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। कुछ गीतों और लोक गाथाओं में चाकरी के दौरान मरे व्यक्तियों का दुखद वर्णन हुआ है। राजवाडे के दिनों में लाहुल के गांव के गांव कुल्लू राजदरबार में चाकरी के लिए आते थे। उन्हें कुल्लू की गर्म जलवायु उचित नहीं उतरती थी और अनेक बार यह जानलेवा बनती थी। लाहुल वासियों में यह विश्वास पनपता था कि यदि कोई 'ग्यापो जचा' अर्थात् राय री-जाच या पीपल-यात्रा के बाद एक दिन भी कुल्लू में रुक जाए तो पित्त के प्रकोप का शिकार होना स्वाभाविक है। इस तरह चाकरी पर आए किसी भी व्यक्ति की मृत्यु हो जाए तो वह लोक गीत का पात्र बन जाता था।

श्री सतीश कुमार लोप्पा ने अपनी पुस्तक गीत-अतीत में "लाहुलियों की चाकरी हेतु प्रस्थान" शीर्षक से पृ. 72-74 पर ऐसी ही एक गाथा दी है जहां यह उल्लेख है कि शेष सभी लोग चाकरी से वापिस आए परन्तु ठूंठा कामी नामक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। इसी पुस्तक के पृष्ठ 29-33 पर "रघुनाथजी का झरी निर्माण" शीर्षक लोक-गाथा में नंदीराम और फुन्चोग नामक शांशा गांव के दो लुहार रधुनाथजी की झरी बनाने कुल्लू राजदरबार आए थे और देव-कृपा से झरी बनाने के बाद सुरक्षित वापिस आए थे। इसी प्रकार सोमसी पत्रिका अप्रैल, 1989 अंक में डॉ. के. अंगरूप लाहुली द्वारा "कैता माया राम" की गाथा प्रकाशित हुई है जिसका घटनाक्रम निस्संदेह भिन्न है, परन्तु इसका भी सम्बन्ध चाकरी से है।

स्वाभाविक रूप से यह जिज्ञासा होती है कि यह 'चाकरी' क्या है और इसका लोकजीवन से क्या सम्बन्ध है। साधारणत: 'चाकरी' शब्द 'चाकर' से भाव-वाचक संज्ञा रूप है। चाकर को प्राय: नौकर का पर्यायवाची शब्द माना जाता है और समास रूप में कहा जाता है कि 'उसके घर में अनेक नौकर-चाकर है'। परन्तु मूलत: चाकर शब्द नौकर का समानार्थक नहीं है। नौकर सर्वथा और सर्वदा वेतन-भोगी कर्मचारी होता है, परन्तु चाकर नि:स्वार्थ भाव से सेवा करने वाला सेवक होता है। इस तरह चाकरी मूल रूप से देवी-देवताओं की नि:स्वार्थ सेवा से सम्बन्धित रही है। जब कभी लोग देवी अथवा देवता के दर्शन सम्बन्धी यात्रा पर निकले हों तो कहते हैं "हम देवी की चाकरी जा रहे हैं।" यह एक नि:स्वार्थ एवं निष्काम कर्म है जब व्यक्ति मात्र देवी की 'चक्षुरी कृपा' (चक्षुरी >चाकुरी >चाकरी) अर्थात् कृपा-दृष्टि की कामना करते है, और कुछ नहीं मांगते। अत: मूल में नि:स्वार्थ और निष्काम सेवा ही चाकरी है।

चाकरी और भेंट

आदि काल में इस पहाड़ी क्षेत्र की सारी भूमि देवी-देवताओं की मानी जाती थी। उस समय की अनिश्चित, भयभीत और असुरक्षित परिस्थितियों में देवता ही एकमात्र पालनहार था। अत: देवी-देवता यहां के लोगों के संरक्षक और मार्गदर्शक थे। लोगों की सुख, शांन्ति, समृद्धि और सुरक्षा देवी-देवताओं पर निर्भर करती थी। लोगों ने देवी-देवता की ओर से काश्त-योग्य ज़मीन बोई और उपज का पर्याप्त भाग देवी-देवता को देने लगे। इस तरह चाकरी में भेंट भी शामिल हो गई।

तब राणा लोग नागों के उपासक थे और ठाकुर नारायणों के पुजारी थे। धीरे-धीरे जब राणा ठाकुरों की स्थिति कुछ सबल और सुदृढ हुई तो उन्हें अपना तथाकथित शासन चलाने के लिए आय के साधनों की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने अपने क्षेत्र के देवी-देवताओं की उस समय की भूमि को तो छुआ-छेड़ा नहीं, परन्तु जो खाली ज़मीन पड़ी थी उसे देवी-देवताओं द्वारा स्थापित परम्परा के आधार पर बढ़ती हुई जनसंख्या में लोगों को देना आरम्भ किया और उनसे उपज का पर्याप्त भाग लेने लगे। इस तरह देवी-देवताओं की चाकरी राणा-ठाकुरों के हिस्से में भी आ गई तथा उन्होंने इसे लगान के रूप में वसूलना शुरु किया।

छोटे राणा-ठाकुरों के परास्त किए जाने पर कुछ बड़े राजाओं की स्थिति अधिक सुदृढ़ हुई। उन्होंने प्रशासन को सुव्यवस्थित करने के लिए और उपाय जुटाए। कुल्लू का राजा मान सिंह एक विद्वान, योग्य, कुशल और वीर शासक था। मुगल शासन में अकबर ने इस क्षेत्र के राजाओं को अपने अधीन अनुशासन में रखने और उनकी वफादारी को सुनिश्चित रखने के लिए 'बंधक' की नीती अपनाई थी। प्रत्येक रियासत के राजा को अपना सबसे बड़ा पुत्र मुगल दरबार में प्रतिभूति के रूप में रखना पड़ता था। तब वहां उन्हें 'मियां' कहते थे क्योंकि उनकी सामान्य पहचान के लिए उन्हें हर समय बिना तलवार की म्यान कमर के साथ बांधे रखनी पड़ती थी। एक समय 22 रियासतों के 22 राजकुमार बंधक के रूप में मुगल दरबार में रहते थे, तथा जब कभी किसी राजा ने आन्दोलन का

साहस किया तो सबसे पहले उसके पुत्र को कैद कर लिया जाता था। राजा के मरने पर उसके पुत्र को वापिस भेजा जाता था और उसके बदले में उसे अपना पुत्र (न होने की स्थिति आदि में भाई आदि) मुगल दरबार में भेजना पड़ता था। इस रूप में मानसिंह भी मुगल दरबार में रहता रहा था। परन्तु वह इतना योग्य राजकुमार था कि वह टोडर मल के बन्दोबस्त से बड़ा प्रभावित हुआ था और उसने मुगल राज्य की भूमि-व्यवस्था का गहन अध्ययन किया था।

बीघा-बीस्वा-बिस्वांसी

राजा बनने पर मानसिंह ने (सन् 1688-1719) सबसे पहले बीस घाणी (चावल बनाने के लिए एक समय में ऊखल में धान की जो मात्रा डाली जाती है उसे एक घाण कहा जाता है) धान लेकर उसे शमशी के समतल खेत में बीज के रूप में बिखेरा। उस बीस घाणी धान ने बीज रूप में जितना रक्बा घेरा उसे 'बीघा' कहा - बीस घाणी > वीह घाण > बीघा। उस बीघा क्षेत्रफल रक्बा को बीस बराबर भागों में बांटा और एक भाग को 'बीस्वा' कहा, अर्थात बीघा का बीसवां भाग। एक बीस्वा के पुनः बीस भाग किए और एक भाग को बिस्वांसी कहा।

इस तरह उसने अपने राज्य की सारी काश्त ज़मीन को रस्सी द्वारा माप डाला और प्रत्येक जिमींदार के अधिकाराधीन भूमि का अभिलेख तैयार किया।

त्राकड़ी-तराजू-बिसाजू

प्रत्येक जमींदार के पास भूमि का रक्बा जान लेने के बाद राजा ने उनसे लगान वसूल करने का उपयुक्त तरीका भी अपनाया। तब तक ज़मींदार अपने अंदाज़े से लगान दिया करते थे। उन दिनों हर घर में अनाज तोलने का साधन नहीं था। राजा की कोठीदार तथा कुछेक अच्छे घरों में त्राकड़ी हुआ करती थी। यह तीन-तीन कड़ियों के सहारे लटके दो बांस के पलड़ों की एक तुला होती थी। पहाड़ी में तीन को 'त्रा' कहते हैं और तीन-तीन बांस की कड़ियों से लटके दो पलड़ों की तुला को त्राकड़ी कहना बड़ा उपयुक्त है। बांस के पलड़ों को लोग गोबर, मिट्टी से लीप दिया करते थे जिसके दो लाभ थे। एक तो इस तरह पलड़े मज़बूत रहते थे; दूसरे यदि कोई पलड़ा हल्का रह जाए तो उसमें अधिक मिट्टी-गोबर लगाकर बराबर कर दिया जाता था। बाद में लोगों ने बांस की तीन कड़ियों के स्थान पर जो, प्रायः शीघ्र टूट जाया करती थीं, तीन रज्जुओं अर्थात रस्सियों का प्रयोग किया और उसे 'तराजू' कहा।

परन्तु त्राकड़ी या तराजू हर घर में सुलभ नहीं था। इसके साथ सेर, पनसेरी आदि के लोहे के बाट होने भी ज़रूरी थे जो हर कोई नहीं खरीद सकता था। अतः राजा ने चौबीस सेर चावल का (धान का नहीं, चावल का) ढेर लगाया। उसके सोलह बराबर भाग बनाए। एक भाग को 'पत्था' कहा अर्थात डेढ़ सेर चावल का एक पत्था। तब जमींदारों को कहा गया कि वे अपने घर में अखरोट, दरल, चोर आदि वृक्षों की लकड़ी के बड़े टुकड़े लें और उसे काट, तराश और छेद कर इतने आकार का पात्र बना लें जिसमें एक पत्था चावल आ जाए। उस काष्ठ-पात्र को "बिसाजू" कहा गया अर्थात् बिना रज्जू का तराजू।

पौथा-भार-लाख-खार

बिसाजू में समाए एक पौथा (पत्था का स्थानीय उच्चारण) अनाज का वज़न सभी अनाजों की स्थिति में समान नहीं होता। चावल, माश, गेहूं की स्थिति में हर एक का वज़न डेढ़ सेर के आस-पास होता है, परन्तु जौ और मक्की के दाने चूंकि कुछ बड़े और हल्के होते हैं और जगह अधिक घेरते हैं इसलिए एक पत्था जौ या मक्की का वज़न डेढ़ सेर नहीं होता। परन्तु क्योंकि ज़रूरी था, इसलिए पत्था का स्वरूप बराबर समझा गया। जैसा बोया वैसा लगान।

इस तरह सोलह पत्था (चावल की स्थिति में 24 सेर) अनाज को 'भार' कहा गया। बीस पत्था को एक लाख और बीस लाख को खार। तोल का यह पैमाना लगभग सभी पहाड़ी रियास्तों में प्रचलित था, परन्तु वज़न की स्थिति भिन्न थी। मण्डी में यद्यपि 1871 के बंदोबस्त में भूमि घुमाओं, कनाल और मरला में मापी गई थी, परन्तु अनाज का वज़न कुल्लू के समान पत्था, भार, लाख और खार में माना जाता था। बिलासपुर में पत्था दो कच्चा-सेर का, नालागढ़ में अढ़ाई कच्चा सेर का, कोटी में नौ कच्चा सेर या तीन पक्का सेर का और जुब्बल में डेढ़ सेर पक्का का हुआ करता था।

वस्तुतः हाथ से बनाए लोटे, पीतल या काष्ट के बिसाजू कभी बराबर नहीं होते थे, इसलिए उसमें समाए अन्न का भार भी भिन्न होता था। इसीलिए लोकोक्ति प्रसिद्ध हुई *"मंगणे भी जाणा पत्था भी अपणा लियाउणा"*।

जेउला-जीवला

पत्था, भार और खार आदि वज़नों को भविष्य में भूमि देने तथा लगान अदा करने के लिए भी इकाई के रूप में प्रयोग में लाया गया। राजा मान सिंह ने

सामान्य परिवार के लिए अपेक्षित भूमि की इकाई को जेउला या जीवला कहा अर्थात जीवन-निर्वाह की इकाई; परन्तु इस इकाई को परिवार के मानक के आधार पर भिन्न निर्धारित किया, मानो उस समय भी समाज में रहने वालों के जीवन-स्तर भिन्न थे। निम्न वर्ग (वर्तमान हरिजन) की स्थिति में यह बारह भार का होता था। इसी पर कर निर्धारित हुआ। निम्न वर्ग के पास यदि छह भार से कम भूमि होती तो उसे कोई लगान नहीं देना पड़ता था और लगान के बदले में उसे राजदरबार में घास काटने, फसल ढोने, लकड़ी इकट्ठा करने, सफाई करने आदि का काम करना पड़ता था। ज़मींदार के प्रथम छह भार पर कोई लगान नहीं लिया जाता था। उसके बदले में उस परिवार को एक सदस्य की सैनिक सेवा देनी पड़ती थी। अगले छह भार पर लगान लगता था जो अनाज की स्थिति में साल का एक भार हुआ करता था। सैनिक सेवा ज़रूरी थी, परन्तु यदि कभी सैनिक सेवा नहीं दी गई तो उसे दो भार लगान देना पड़ता था।

यह नीति लगभग सभी पहाड़ी रियासतों में कुछ फेर-बदल के साथ प्रचलित थी। बिलासपुर में जेउला को भौली कहते थे और यह बारह से बीस लखाओं या घुमाओं की हुआ करती थी।

चाकरी का नया स्वरूप

कर की चोरी करने या कर न देने की मानव में स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति आज भी है तब भी थी। कुछ लोगों ने सोचा सर्दियों में कोई काम नहीं है। राजा के पास बहुत काम होता है। वहां काम कर आऊंगा। कर माफ करवा दूंगा। कुछ परिवारों की सामान्य मजबूरी भी हुआ करती थी। मौसम अनुकूल नहीं रहा। सूखा या वर्षा से फसल खराब हुई। परिवार का गुज़ारा कठिन हो गया। वे भी राजा के पास गए, "आपके यहां महल बन रहा है, कुल्हों का निर्माण हो रहा है, मन्दिर बन रहे हैं। नई भूमि खोदी जा रही है। हम आपकी चाकरी करेंगे। लगान माफ कर दें।" इस तरह चाकरी नयी परिस्थितियों में नये रूप में उभर कर सामने आई। लोग अपने घरों से आटा-दाल ले आते, महल के आंगन-प्रांगण में रहते, दिन को काम करते और कर-मुक्त हो जाते। रोटी, कपड़ा, अपना प्रयोग में लाया, चाकरी, सेवा राजा की कर दी।

स्थिति यहीं तक सीमित नहीं रही। धीरे-धीरे कुछ लोगों ने सोचा कि राजा के पास अधिक काम तो होता नहीं। सैंकड़ों लोग आते हैं, बैठे रहते हैं, कोई लेखा-हिसाब नहीं रहता, छोड़ो चाकरी के लिये क्या जाना है, क्यों जाना। इस तरह लगान से भी मुक्ति पाई और चाकरी से छुट्टी पाई। स्वाभाविक है कि जब राजा को किसी परिवार या क्षेत्र से लगान नहीं आया और चाकरी भी नहीं मिली तो राजदरबार से आदेश जारी हुए और आदेशों के अनुपालन में ज़िम्मेदार चूककर्त्ताओं को चाकरी के लिए आना पड़ता था। ये आदेश सभी को जारी होते थे, परन्तु क्योंकि लाहुल वालों के लिए इनके अनुपालन में कठिनाई होती थी अत: वे लोक-साहित्य के विषय बन गए। इस प्रकार चाकरी के मूल में जो निष्काम-कर्म की भावना थी वह, समय बीतने पर, जिम्मेवारी और उत्तरदायित्व में बदल गई।

चाकरी परिणत बेगार

शासन को जब कोई अधिकार मिलता है तो उसका दुरुपयोग उसे इतना ही सहज हो जाता है जितना चूककर्त्ता को चूक करना सरल होता है। पहाड़ी रियासतों के राजाओं को भिन्न रियासतों में भिन्न समय पर, चाकरी लेने का अधिकार आ गया। जब लगान देने वालों ने न लगान दिया न उसके बदले चाकरी की तो राजाओं ने आदेश देकर ऐसे चूककर्त्ताओं को चाकरी के लिए बुलाया। परन्तु स्थिति यहीं तक सीमित नहीं रही। राजदरबार के लिए लकड़ी पानी और कोयले का प्रबन्ध, पशुओं के लिए चारा और घास की व्यवस्था, कपड़े, मकान, घर, आंगन, की सफाई, महल, मकान और चौकियों में चौकसी, खेतों में बिजाई और काश्त राजा के अधिकारियों और कर्मचारियों की सेवा के लिए तो नियमित सेवक होते थे, जिन्हें जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, लगान पहले से ही माफ था। सामान्य सैनिक सेवा के लिए भी व्यवस्था थी क्योंकि ज़मींदार जेउलाधारी को प्रथम छह भार के लिए सैनिक सेवा देनी होती थी। अगले छह भार के लिए उसे एक भार लगान के लिए देना पड़ता था। इस तरह कुल उपज के राज्य के छठे भाग को छभागी 'षष्ट भागिन' या बाली कहते थे।

इस छठे भाग को लगान के बदले काम द्वारा पूरा किया जाना भी नियमबद्ध व्यवस्था कहा जा सकता है। यह भू-राजस्व अथवा कर अदा करने की सुनियोजित विधि थी। जब लोगों के पास लेन-देन के लिए धन या सिक्कों की कमी थी तो पदार्थों के बदले पदार्थ या कर के बदले मज़दूरी विनिमय का उपयुक्त साधन था। इस सारे उपबन्ध के अधीन सेवा भी निश्चित अवधि की होती थी। एक ही व्यक्ति या व्यक्ति-समूह सदा सेवारत नहीं रहता था। प्रत्येक

परिवार के एक सदस्य को निश्चित अवधि के लिए राजा की सेवा हेतु जाना पड़ता था। यह अवधि रियासत की जनसंख्या और काम की अधिकता-न्यूनता पर निर्भर करती थी जो प्राय: प्रत्येक की स्थिति में एक महीने से छह महीने तक की होती थी। जमींदार की भूमि की मात्रा का भी ध्यान रखा जाता था। अधिक भूमि के स्वामी को अधिक देर तक और कम भूमि के मालिक को कम समय की सेवा करनी पड़ती थी।

इस व्यवस्था में पहला परिवर्तन तब आया जब किसी ने लगान न देने की स्थिति में चाकरी देना आरम्भ किया। धीरे-धीरे जब चाकरी देने में भी कोताही हुई तो राजाओं ने अपने कानून के अधीन चूककर्त्ताओं को चाकरी देने के लिए विवश कराया।

राजा लोग जब एक बार चाकरी लेने के प्रलोभन में पड़ गए तो व्यवस्था में ज़्यादतियां होने लगीं और कानून का उल्लंघन हुआ। तब किसी के प्रति ध्यान दिए बिना हर प्रकार के ज़मींदार और निम्नवर्ग के सदस्य को कभी भी और किसी भी काम के लिए बुलाया और लगाया जाने लगा तथा चाकरी उस घृणित परम्परा में बदल गई जो सारी पहाड़ी रियासतों में बेगार के नाम से कुख्यात हुई। यह सामन्तवाद का ऐसा कठोर तन्त्र था जिसके अधीन किसी भी व्यक्ति को किसी भी समय बिना वेतन या रोटी कपड़ा दिए काम पर लगाया जा सकता था, चाहे उसने विधिवत राजस्व, कर या लगान भी अदा किया हो। छोटे से छोटे काम से लेकर बड़े कामों तक अनेक बेगारी राज्यसेवा में तैनात रहते थे। राजकुमार के जन्म, उसके राज्याभिषेक और विवाह जैसी खुशी और हर्ष तथा मृत्यु जैसे ग़मी के अवसरों पर विशेष रूप से अनेक ज़मींदार बेगार के लिए बुलाए जाते थे जब खुशी के मौके पर उन्हें भोजन मिल जाता था। राजा के महल के निर्माण, मार्गों की मुरम्मत या निर्माण, कुल्हों तथा बावली-चश्मों की खोदाई-सफाई आदि विशेष अवसरों पर तो गांव के गांव बेगार देते थे। इस प्रकार बेगार को जन्म देने वाले स्वयं ज़मींदार थे, परन्तु उसे गैर-कानूनी रूप देने और कठोरता में बदलने के लिए राजा ज़िम्मेदार थे।

मौलू राम ठाकुर, देवप्रस्थ भवन, ढालपुर, कुल्लू

...पृष्ठ 10 का शेष (खमरण्ड़...)

सम-मूल्य-नकदी के रूप में लेना पसन्द करती है, बहुत से दाता भी इस बात को समझने लगे हैं और दे रहे हैं। स्त्रियों के लिए यह एक संतोष की बात होनी चाहिए। 'वस्त्र-दान' में गुणवत्ता की कमी जहां सामाजिक सम्बन्धों में शिथिलता का नतीजा है, वहीं दूसरी ओर ठोस मनोवैज्ञानिक तथ्य यह है कि लोग आज अपने परलोक के प्रति उस उत्कटता से चिंतित और सचेत नहीं हैं। आज की मनोवृत्ति यही है कि जो है जीते जी है, मरने के बाद को किसने देखा है? और उस अनदेखे सफर परिष्कार के लिए दान की महिमा और भी धूमिल अवधारणा बन चुकी है। यानि मरने के बाद क्रिया-कर्म, दान-पुण्य हो या न हो इसकी परवाह किसी को रही नहीं। इन भावनात्मक शिथिलताओं और विवर्तन के चलते 'वस्त्र-दान' के प्रति भी उनके मन में एक अन्तर्निहित अरुचि व्याप्त हो चुकी है पूरे समाज में, चाहे बाहरी तौर पर दाता लोग इस बात को स्वीकार करें, या न करें।

देने वालों में अरुचि है, लेने वाले खुलेआम विरोध करती है तो यह प्रथा जीवित किस के दम पर है? लोकाचार के दम पर, समाज की समग्र गति के दम पर। इसी से यह परिचालित है। यह सच है। बावजूद इसके मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि इस प्रथा की अन्त्येष्टि का समय अब आ पहुंचा है। बस एक पहल की ज़रूरत है, विद्रोह को आह्वान की ज़रूरत है, कारवां तो बनते चले जाने को आतुर बैठा है। कौन भरेगा यह हुंकार? कोई नहीं। कोई त्राता नहीं आएगा बाहर से। समाज का निशाना बनना कोई नहीं चाहता। लेकिन मैं जानता हूं और साफ-साफ देख रहा हूं, ईश्वर ने इस काम के लिए एक ही व्यक्ति को चुन रखा है। वह कोई और नहीं गृह की श्री स्वरूपा, यहां की विवाहिता नारी। वही भरेगी पहला हुंकार। उसे ही पहल करनी होगी, मुक्ति के मार्ग पर। क्योंकि इस प्रथा से कोई और नहीं, वही तो पीड़ित हो रही है। पीड़ा की कोख से ही क्रांति जन्म लेती है, किसी शून्य से नहीं। मगर कैसे? कैसे होगा यह सब? बहुत आसान! बहुत ही आसान!! आप खुद से ही कहेंगी - अरे, इतनी सी बात मैंने पहले क्यों नहीं की! आप को सिर्फ इतना ही करना है कि जिस-जिस अपने जैसी निरीह को आपने 'वस्त्र-दान' करके अपना ऋणी बना रखा है और भी अन्य जिन्हें ऋणी करने वाली हैं उन सब को इस ऋण से मुक्त करने की सार्वजनिक घोषणा कर दीजिए। उनके 'बरतणों' के बही-खातों में यह उद्घोषणा दर्ज कर दीजिए कि मेरी मृत्यु पर 'वस्त्र-दान' के एवज़ में एक तिनका तक न लाएं। बस फिर देखिए, आगे मुक्ति का मार्ग आपके स्वागत के लिए आँखें बिछाए बैठा है।□

दोहरी नागरिकता का असमंजस

एक राह तो चुननी ही पड़ेगी

पिछले दो-तीन दशकों में लगभग सारा लाहुल ही कुल्लू में जगह-जगह बस सा गया है। पहले तो यह बहाव गांवों तक सीमित था, लेकिन अब नौकरी पेशा लोग सेवा-निवृत्ति के बाद कुल्लू व भुन्तर के बीच बसना पसन्द कर रहे हैं। आरम्भ में तो इस व्यवस्था से लाहुली समाज पर दबाव कम उन्मुक्तता ज़्यादा हावी रहा, लेकिन समय बीतने के साथ आर्थिक उन्नत्ति के चलते संयुक्त परिवार विघटित होते गए, जिसके दबाव से आज लाहुली समाज व्यथित है। कुल्लू बसने की होड़ ने आज लाहुल की सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था को जर्जर कर दिया है। आज सारा निवेश, चाहे वह मानव स्तर पर हो या फिर अतिरिक्त पैसे का निवेश हो, उसका सीधा रास्ता कुल्लू की ओर जाता है।

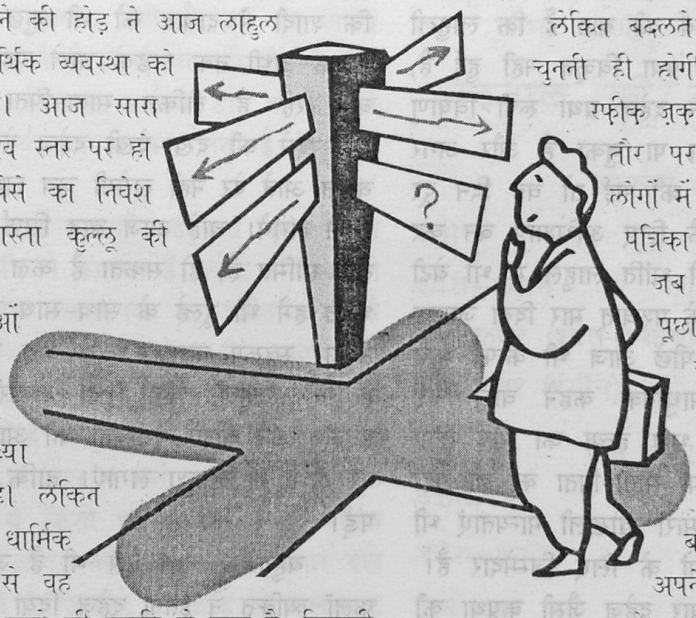

इन सब घटनाओं के परिदृष्य में कुल्लू में लाहुली मूल की एक बड़ी जनसंख्या पूर्णतया बस गई है। लेकिन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और वैचारिक रूप से वह कहीं न कहीं जड़ से टूटने की ग्लानि से ग्रस्त है, जिसकी वजह से वह लाहुली समाज के हर आन्तरिक पहलुओं से जुड़े रहने और हस्तक्षेप करने के मोह से अपने आपको अलग नहीं रख पाता है। परन्तु वह मूल से व्यावहारिक तौर पर लगभग अलग हो चुका है, इस तरह उसे लाहुल में अपने ही लोग बाहरी होने की संज्ञा देने लगे हैं। इससे वे अपने आपको अनिवासी लाहुली मानने लगे हैं। लेकिन एक बात वे भूल रहे हैं, कि वे इस प्रकार न ही पूर्णतया लाहुली समाज का हिस्सा बन पा रहे हैं और न ही कुल्लू की नैतिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक ज़िम्मेदारियों का निर्वाह कर पा रहे हैं। इस प्रकार वे अब विस्थापित होने की एक सुप्त कुंठा मन में पाले हुए दो नावों में सवार व्यक्ति की तरह दोहरी नागरिकता का बोझा ढो रहे हैं। ये अब अनिवासी लाहुली से अनिवासी विस्थापित लाहुली (अ.व.ला.) बन कर रह गए हैं।

लेकिन बदलते समय के साथ एक राह तो चुननी ही होगी। यहां पिछले दिनों जनाब रफ़ीक ज़कारिया, जोकि विश्व में राजनैतिक तौर पर पच्चीस सबसे प्रभावशाली लोगों में माने जाते हैं तथा 'न्यूज़वीक' पत्रिका के राजनैतिक संपादक हैं, को जब एक दूरदर्शन साक्षात्कार में पूछा गया कि आप भारतीय होने व संयुक्त राज्य अमेरिका के नागरिक होने में किसे चुनते हैं, तो उनका उत्तर था कि मैं पूर्णतया अमेरिकी नागरिक बनकर रहना चाहूंगा जिसका अपने मूल देश भारत से गहरा भावनात्मक लगाव हो। यही बात आज के सन्दर्भ में अनिवासी विस्थापित लाहुली (अवला) के लिए भी उचित प्रतीत होती है। जहां वे अपने इस नए अपनाए हुए परिवेश में अपने नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक ज़िम्मेवारियों का निर्वाह करते हुए अपनी अस्मिता और गौरवपूर्ण स्थान को अपने मूल से गहरे भावनात्मक सम्बन्ध बनाए रखते हुए भी पा सकता है।

-बलदेव कृष्ण 'घरसंगी'

नोट –

'सरोकार' शीर्षक से एक नया स्तम्भ आरम्भ करने जा रहे हैं, जिसमें पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र से सम्बन्धित राजनीति से इतर किसी भी ज्वलंत विषय पर विश्लेषणात्मक लेख स्वीकार किए जाएंगे। प्रबुद्ध लेखकों से निवेदन है कि इस स्तम्भ के लिए अपने लेख भेज कर अनुगृहीत करें।

-संपादक

''दुल्हन ही दहेज''

- शकुन (गांव कीर्तिंग)

घर के सामने से गुज़रती हुई सड़क और उस सड़क पर आती-जाती गाड़ियां जिन पर लिखा होता है - "दुल्हन ही दहेज है"। जब से होश संभाला तब से कई बार मैंने यह जुमला पढ़ा है, आपने भी पढ़ा होगा, लेकिन क्या कभी आपने इस जुमले में छिपे अर्थ, उसकी गहराई को ठीक से समझने की चेष्टा की? शायद नहीं। आज अपने आसपास की दुनिया को देखकर यूं लगता है कि यह जुमला महज़ पढ़ कर भुला देने के लिए नहीं बल्कि इन चार अक्षरों को समझने व उसे यथार्थ में उतारने की भी जरूरत है।

दहेज जैसी कुप्रथा रूपी विषाणु, समाज को किस तरह अपना ग्रास बनाता जा रहा है, यह हम आए दिन अखबारों व पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ते है तथा समाचारों में सुनते है। यह हमारे लिए गर्व की बात है कि लाहुली समाज में अभी तक दहेज प्रथा विकृत नहीं हुई है, लेकिन इतना निश्चित है कि दहेज प्रथा रूपी विषाणु लाहुली समाज में भी प्रवेश पा चुका है और अगर तुरन्त इसकी रोक-थाम नहीं की गई तो वह दिन दूर नहीं जब बेटी माता-पिता के लिए अभिशाप बन कर आएगी और दूसरे समाजों की भांति लाहुल में भी बेटी को जन्म से पहले या जन्म के पश्चात् मार दिया जाएगा - खुलेआम। यूं तो पर्दे के पीछे आज भी काफी कुछ हो रहा है। स्वयं को आधुनिक कहने वाले कई माता-पिता, अपने माथे पर भ्रूण हत्या का पाप लिए घूम रहे है, लेकिन दोष सिर्फ माता-पिता का ही नहीं है बल्कि हमारा समाज व हमारी खोखली मान्यताएं भी काफी हद तक ऐसी घटनाओं के लिए जिम्मेदार है।

चन्द्रताल में एक दो बार दहेज जैसी कुप्रथा की तरफ उंगली तो उठाई गई, लेकिन इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा नहीं की गई। लेकिन अब वक्त आ गया है कि हम और आप मिलकर इस बात पर चिन्तन-मनन करें कि कहीं हम स्वयं ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी तो नहीं मार रहे?

जनजातीय क्षेत्र घोषित होने या नौकरियों में आरक्षण प्राप्त करने के बाद लाहुली समाज ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। अपने कष्ट व अभाव के दिनों को वे अपनी मेहनत व सूझ-बूझ से एक खुशहाल ज़िन्दगी की तरफ ले गए और आज लाहुल की अपनी एक पहचान है। आज लाहुल के हर इन्सान के पास ज़्यादा नहीं तो तन ढकने को कपड़े, पेट भर खाना व सिर छुपाने को एक छत है - बेशक, अमीर, मध्यमवर्ग व गरीब परिवार - तो हर समाज में है ही। लेकिन इसका एक दुःखद पहलू भी है। जैसे-जैसे लोग खुशहाली की तरफ बढ़ रहे है वैसे-वैसे लाहुली समाज में भी दहेज प्रथा जैसे कई विषाणु धीरे-धीरे अपनी जड़ें जमाने लगे है।

आज बेटी के विवाह पर लोग लाखों रुपए बेटी को देते है, उपहार के रूप में ही सही, लेकिन उसे दहेज ही कहा जाएगा। बेशक आज माता-पिता स्वयं अपनी इच्छा से दे रहे है। लेकिन कल को हो सकता है कि लड़के वाले दहेज की मांग भी करने लगें। ऐसी आशंका इसलिए भी है क्योंकि आज ज़्यादातर माता-पिता बेटी के साथ-साथ दामाद को भी कुछ न कुछ देने लगे है जैसे कि सोने की अंगूठी, घड़ी या सूट या फिर कुछ और। इससे लड़के वाले भी यह अपेक्षा करने लगे है कि शादी में दामाद को भी कुछ न कुछ दिया जाए। बेशक अभी तक लड़के वाले यह बात खुल कर नहीं कह रहे है लेकिन माता-पिता अगर इसी प्रकार एक-दूसरे की देखा-देखी दहेज देने लगे तो फिर वह वक्त आते देर नहीं लगेगी जब लड़के वाले अपनी माँग रखने लगेंगे। चाहे आज बात सिर्फ दामाद को चीज़ें देने तक सीमित है, हो सकता है कल को दूसरे समाजों की भाँति हमें भी दूल्हे के साथ-साथ उसके पूरे परिवार को उपहार स्वरूप कुछ न कुछ देना पड़े। बक्त आ गया है कि लाहुली माता-पिता अमीरी की चकाचौंध से हटकर आने वाली मुसीबतों की आहट को सुनें और उन पर अभी से अंकुश लगाएं। ताकि एक दिन पछताना न पड़े।

बहुत से लोग ऐसे भी है जो यह सोचते है कि फलाँ व्यक्ति ने इतना दहेज दिया तो हमें उससे बढ़कर ही देना है, चाहे उसके लिए कुछ भी क्यों न करना पड़े। समाज की मानसिकता व उसका तुलनात्मक रवैया भी काफी हद तक इस चीज़ को बढ़ावा दे रहा है। मै जानती हूँ कि इस प्रथा का अन्त एकदम संभव नहीं लेकिन इसे खत्म करने का बीड़ा भी हम और आप को ही उठाना होगा। बेशक यह इतना आसान नहीं लेकिन इतना तो हो सकता है कि माता-पिता दहेज की होड़ में शामिल होने की बजाए उतना ही दें जितना वे दे सकते है, खासकर के वे मध्यम वर्गीय परिवार जो अपने खून-पसीने की कमाई को जोड़-तोड़ कर दहेज रूपी दानव का पेट भरने की कोशिश करते है जो कि कभी भर ही नहीं सकता, चाहे जितना भरते जाओ। इसलिए माता-पिता को चाहिए कि लोगों की नुक्ताचीनी व तुलनात्मक रवैये के भय से स्वयं को उस भंवर में

कभी न फंसने दें, जहां से निकलने का कोई रास्ता नहीं।

आज हर माता-पिता अपनी बेटियों को अच्छी तालीम देते हैं, फिर दहेज के रूप में अतिरिक्त पैसों की क्या आवश्यकता है? माता-पिता अपनी बेटी को पाल-पोस कर बड़ा करते हैं, लाखों रुपये खर्च करके उसे पढ़ाते-लिखाते हैं और उसे अपने पैरों पर खड़ा करते हैं। लेकिन बात यहीं पर खत्म नहीं होती फिर उन्हें उसी बेटी के लिए दहेज जुटाना पड़ता है। क्या ऐसा नहीं लगता कि यह बेटी के मां-बाप के साथ ज्यादती है? इसीलिए शायद लोग बेटी को बोझ मानते हैं, प्रत्यक्ष या परोक्ष, किसी भी रूप में। और फिर बेटी की भी यह कैसी विडम्बना है कि जो माता-पिता जीवन पर्यन्त उसके लिए कष्ट उठाते हैं, उनकी सेवा करने की बजाए उन्हें कहीं पीछे छोड़ जाती है और एक ऐसे परिवार को अपना लेती है, उन पर अपना जीवन न्यौछावर कर देती है जिन्हें वह जानती भी नहीं है। क्या वह नारी, जिसका सर्वस्व उस परिवार के लिए अर्पित है जिसे वह अपना बना लेती है, स्वयंमेव एक दहेज नहीं?

मैं जानती हूँ कहीं न कहीं यह बात ज़रूर उठेगी कि जो लड़कियां कृषि में कार्यरत हैं, उनके भविष्य की सुरक्षा के लिए, दहेज आवश्यक सा प्रतीत होता है लेकिन उससे कहीं अच्छा यह होगा कि माता-पिता बेटियों को प्रोत्साहित करें और उन्हें मौका दें कि वे कुछ न कुछ काम सीखें जैसे कि सिलाई, कढ़ाई, बुनाई इत्यादि ताकि अगर भगवान न करे कभी उन पर बुरा वक्त आए भी तो वे किसी पर आश्रित न हों बल्कि अपने हुनर से अपने जीवन को संवार सकें। हमारे देश में बहुत से लोग ऐसे हैं जिन्होंने इस तरह के कलात्मक कार्यों में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है फिर आपकी बेटी क्यों नहीं? अगर बहुत ज़्यादा अपेक्षा न भी रखी जाए तो भी वे कम से कम इतना तो कमा सकती हैं कि वे किसी की दया की मोहताज नहीं होगी।

मैं नहीं जानती वह वक्त कब आएगा जब दुल्हन को ही दहेज के रूप में स्वीकार किया जाएगा लेकिन इतना विश्वास ज़रूर है कि अगर हम और आप मिलकर इस कुप्रथा के विरुद्ध खड़े होंगे तो वह दिन दूर नहीं जब लड़की के माँ-बाप को दहेज की चिंता नहीं करनी पड़ेगी, अपनी ज़रूरतों को नज़रअन्दाज़ कर एक-एक पैसा जमा नहीं करना पड़ेगा, कोई ऐसा गम नहीं होगा जिसे अपनी मुस्कराहट के पीछे छिपाना पड़े और सब से बड़ी बात, फिर कोई बेटी अपने माता-पिता पर बोझ नहीं होगी।□

चन्द्रताल में विज्ञापन दें

चन्द्रताल त्रैमासिक पत्रिका दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होती जा रही है।

इसके पाठकों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है, जो समाज की हर पृष्ठभूमि से सम्बन्ध रखते हैं।

आज इस पत्रिका की 3000 से ज़्यादा प्रतियां लाहुल-स्पीति, हिमाचल प्रदेश तथा देश के विभिन्न भागों में पढ़ी जाती हैं।

अतः आप अपने उत्पाद व व्यवसाय को अगर बढ़ाना चाहते हैं, तो इस पत्रिका में विज्ञापन देकर लाभ उठाएं।

चन्द्रताल की नई विज्ञापन दरें

आवरण (भीतर पृष्ठ)	
रंगीन	10,000.00
श्वेत–श्याम	7.500.00
बैक कवर (श्वेत–श्याम)	10,000.00
बैक कवर (रंगीन)	15,000.00
बैक कवर (भीतर पृष्ठ)	
रंगीन	10,000.00
श्वेत–श्याम	7.500.00
पूर्ण पृष्ठ	5,000.00
अर्ध पृष्ठ	3,000.00
चौथाई पृष्ठ	1,000.00
शुभ कामनाएं	250.00

नोट :- चन्द्रताल त्रैमासिक पत्रिका, लाहुल-स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु सोसायटी, जो सोसायटीज़ रेजिस्ट्रेशन ऐक्ट 21, 1860 के अधीन ल०स०/42/93 पंजीकृत संख्या के साथ ज़िला मुख्यालय केलंग में पंजीकृत है, द्वारा प्रकाशित की जाती है। जैसे कि सर्वविदित है कि इस प्रकार की पत्रिका का प्रकाशन व प्रसार काफी कठिन होता है तथा यह पत्रिका पूर्णतः अव्यवसायिक तथा सम्पादन व प्रबन्धन अवैतनिक है, इसलिए इस सोसायटी की कार्यकारिणी समिति ने प्रस्ताव द्वारा विज्ञापन की उपरोक्त नई दरें तय की हैं ताकि पत्रिका सुचारु रूप से प्रकाशित हो सके। कृपया सभी विज्ञापन दाता इन नए परिवर्तित विज्ञापन दरों पर ध्यान दें।

-सम्पादक

हिमाचल में देवी-देवताओं का अवतरण - डॉ० सूरत ठाकुर

हिमाचल प्रदेश में देवता को 'देओ' या 'देऊ' कहते हैं। देऊ का अभिप्राय होता है देने वाला, अर्थात् जो पूजक की अभिलाषाओं की पूर्ति करता है। वैसे देवता शब्द का अर्थ होता है 'जायमानौ वै जायते सर्वाभ्य एताभ्य एव देवताभ्य:'। जो विश्व का उपादान मूल कारण है वह देवता है। 'दिवु' क्रीड़ा धातु से देवता शब्द निष्पन्न होता है। महर्षि यास्क के अनुसार देवता शब्द का निर्वचन इस प्रकार है --

देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा द्योतनाद्वा।

द्युस्थानौ भवतीति वायो देव: सा देवता।।

अर्थात् दातृत्वशक्ति से युक्त दीपन और द्योतन करने वाले को देव कहा जा सकता है। देव ही देवता कहलाता है। जो देता है वह देव है। ये देवता ब्रह्माण्ड एवं ब्रह्माण्डन्तर्गत वस्तुओं की उत्पत्ति के लिए अपने-अपने अंशों का दान करते हैं अत: ये देवता कहलाते हैं। दर्शन एवं आगम की परिभाषा में जिसे शक्ति कहते हैं वेदों में वही प्राण अथवा देवता कहलाता है। मानव शरीर में दसों इन्द्रियों तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के रूप में चतुर्थानिरूपित अन्त:करण को प्रकाशित करने वाली शक्तियों को भी देवता कहते हैं।

गीता में भी कहा है कि मनुष्य यज्ञ द्वारा देवताओं को प्रसन्न करें और देवता मनुष्य की उन्नति करें। इस प्रकार एक दूसरे के सहकारी बन कर परमकल्याण प्राप्त करें। देवता को युनानी में 'देओस' लैटिन में 'देउस' जर्मन में 'गाट' शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

हिन्दु संस्कृति में सर्वप्रथम देवतावाद के प्रसारक वेद ही हैं। ये परमात्मा के ही उत्तम अंग माने गए हैं। इसीलिए देवपूजा हिन्दु संस्कृति का एक अंग है। देवताओं में अलौकिक शक्ति रहती है। पहाड़ी समाज का मानना है कि सम्पूर्ण संसार का भरण-पोषण देवताओं पर ही आश्रित है। देवताओं के अनुकूल होने पर ही संसार सुख का श्वास ले सकता है।

वैसे तो मनुष्य अन्य जीवों में श्रेष्ठ जीव है। परन्तु मनुष्य से भी कई दर्जो में ऊंचा पद रखने वाले जीव भी सृष्टि में विद्यमान हैं। इन श्रेष्ठ जीवों में सबसे ऊंचा स्थान देवताओं का है। ये चेतन हैं तथा मनुष्य से ऊपर और परमेश्वर से नीचे हैं। देवता अजर और अमर हैं परन्तु इनका अजर और अमर होना मनुष्यों की अपेक्षा से है। देवता एक बड़ी शक्ति वाले देह के स्वामी होते हैं। वे अपनी इच्छानुसार जैसा चाहें वैसा रूप धारण कर जहां चाहें वहां जा सकते हैं। एक-एक देव एक-एक दिव्य शक्ति का नियन्ता है। देवतओं की उपासनाओं से उन कामनाओं की सिद्धि होती है जिनके कि ये मालिक होते हैं। देवताओं की आयु एक हज़ार दिव्य वर्षो की मानी गई है। मानव वर्ष के 360 वर्ष मिलाकर देवताओं का एक दिव्य वर्ष होता है। इस प्रकार देवागणों की आयु मनुष्य के 3 लाख 60 हज़ार वर्ष के बराबर होती है। लौकिक व्यवहार में भी हम देखते हैं कि जिसके द्वारा उपकार हो वह देवता माना जाता है। उदाहरण के लिए अग्नि, वायु, सूर्य आदि ऐसे देव हैं जिनके तत्व से चर-अचर जगत का उपकार होता है। ये मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जीवों को अन्न, घास-चारा इत्यादि पकाकर देते हैं।

देवताओं की जातियां

वेदों के ब्राह्मण भाग में देवताओं की जातियों का उल्लेख है। इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि नियन्त्रण और शासन शक्ति वाले देवताओं को क्षत्रिय जाति के देवता, अग्नि को ब्राह्मण जाति का देवता, धन के अधिष्ठाता अष्टवसु देवताओं को वैश्य जाति के देवता और पूषा को शुद्र जाति का देवता कहा गया है।

देवियों में भी दुर्गा को शक्ति का वाहक, लक्ष्मी को धन की अधिष्ठात्री तथा सरस्वती को विद्या देने वाली माना गया है। विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध और भूत ये दस प्रकार की देवजातियां कोषकारों को मान्य हैं।[1] प्राचीन साहित्य में देवताओं के दो वर्ग माने गए हैं। वैदिक और लौकिक। वृहादारण्यक उपनिषद में देवता या देव शब्द पर प्रकाश डाला है कि प्रजापति के दो पुत्र थे - एक देव और दूसरे असुर। देव छोटे थे या संख्या में कम थे। असुर बड़े थे या संख्या में अधिक थे। इनमें सदा एक दूसरे से महान तथा शक्तिशाली बनने के लिए परस्पर होड़ लगी रहती थी। वृहदारण्यक में ही एक प्रसंग में शाकल्य ने महर्षि याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया कि देवता कितने हैं? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया -- "तीन हज़ार तीन सौ छ: देवता हैं। जो वेदमन्त्रों और सूक्तों में संस्तुत होते हैं। पुन: प्रश्न करने पर महर्षि ने इनकी संख्या क्रमश: तैंतीस (आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र तथा प्रजापति) छ:, तीन, दो, डेढ़ तथा एक बतलाई। इनके अतिरिक्त मरुद्गण, गान्धर्व, अप्सराएं आदि भी देवलोक वासी होने से देवता कहलाते हैं। देवताओं की संख्या 33

करोड़ भी मानी गई है। जिसमें मुख्य देवता त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेष तथा उनकी शक्तियां सरस्वती, लक्ष्मी तथा दुर्गा हैं।

देवताओं की श्रेणियां

देवताओं का श्रेणी विभाजन करने पर मुख्यत: वैदिक एवं पौराणिक देवता तथा लौकिक एवं स्थानीय देवता अवलोकित होते हैं। स्वामी श्री रामसुख दास महाराज ने देवताङ्क (कल्याण) के अपने लेख 'देवता कौन' में देवताओं का श्रेणी विभाजन इस प्रकार किया है --

१. **आजान देवता**

जो महासर्ग से महाप्रलय तक देवलोक में रहते हैं, वे आजान देवता कहलाते हैं। इनके भी दो भेद हैं - *(क) ईश्वर कोटि के देवता* - शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य और विष्णु - ये पांचों ईश्वर भी हैं और देवता भी। इन पांचों के शिवजी के शैव, शक्ति के शाक्त, गणपति के गाणपत, सूर्य के सौर और विष्णु के वैष्णव सम्प्रदाय कहलाते हैं। इन पांचों में जब एक ईश्वर होता है तो अन्य चार देवता होते हैं।

(ख) साधारण देवता - इन्द्र, वरुण, मरुत, रुद्र, आदित्य, वसु आदि साधारण देवता हैं।

२. **मर्त्यदेवता**

जो मनुष्य मृत्यु लोक में यज्ञ आदि करके स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं वे मर्त्य देवता कहलाते हैं। ये अपने पुण्य के बल पर वहां रहते हैं और पुण्य क्षीण होने पर फिर मृत्युलोक में लौट आते हैं। गीता में इसके बारे में उल्लेख हुआ है --

तेतं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं,
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

३. **अधिष्ठातृ देवता**

सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का एक मालिक होता है जिसे अधिष्ठातृ देवता कहते हैं। नक्षत्र, तिथि, वार, महीना, वर्ष, युग, चन्द्र, सूर्य, समुद्र, पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश, शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि सृष्टि की मुख्य-मुख्य वस्तुओं के अधिष्ठातृ देवता आजानदेवता बनते हैं और कुआं, वृक्षादि साधारण वस्तुओं के अधिष्ठातृ देवता मर्त्यदेवता बनते हैं। अधिष्ठातृ देवता अपने अधीन वस्तु की रक्षा करते हैं। वास्तव में संसार की प्रत्येक वस्तु का एक अधिष्ठातृ देवता है। यदि कोई नए घर का निर्माण हुआ तो उस गृह के अधिष्ठातृ देवता होंगे और उस गृह के टूटते ही उनका यह अधिकार नष्ट हो जाएगा। इसी प्रकार किसी नवीन ग्राम का निर्माण होगा तो वहां के एक ग्राम देवता होंगे। उस स्थान घर एवं ग्राम की सुरक्षा एवं कल्याण के लिए इन अधिष्ठातृ देवों की पूजा आवश्यक होती है।

समस्त हिमाचल में प्रत्येक गृह का गृहदेवता, कुल का कुल देवता, ग्राम का ग्रामदेवता तथा फाटी या कोठी का अधिपति देवता अधिष्ठातृ देवताओं की श्रेणी में ही आ जाते हैं।

४. **लौकिक देवता**

देवता को लौकिक श्रेष्ठता के पर्याय के रूप में भी प्रयुक्त किया गया है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जो ब्राह्मण, शुश्रुषु और वेदाभ्यासी है वे मनुष्यों में भी देवता ही हैं --

ये ब्राह्मण: शुश्रुवासोऽनुचानास्ते मनुष्य देवा:।

लोक कल्याण के लिए वेदाभ्यासी, शास्त्रज्ञ, बलिदानी, दानी, वीर, एवं सिद्ध पुरुष भी लौकिक देवताओं की श्रेणी में अपना स्थान बनाते रहे हैं। हिमाचल प्रदेश में तो लोक देवताओं की भरमार है जिन्होंने समाज उत्थान एवं कल्याण के लिए अपने आप को समर्पित किया है। इसी समर्पण के कारण कालान्तर में ये देवरूप में पूजे जाने लगे और ग्रामों में स्थापित हुए।

देवी-देवताओं के जन्म के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों से लेकर भिन्न-भिन्न प्रकार की कथाएं सुनने को मिलती हैं। मनुस्मृति के प्रथम अध्याय के 24वें और 25वें सूक्त में देवताओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है --

कर्मात्मनां च देवानां सेऽसृजत्प्राणिनां प्रभु:।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम्।।
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मा सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजु: साम लक्षणम्।।

अर्थात् सभी प्राणियों के अधीश्वर परमात्मा ने कर्मस्वभाव वाले अग्नि, वायु आदि देवों को साध्यों के सूक्ष्म समुदाय को और सनातन यज्ञ को उत्पन्न किया। इसके उपरान्त उस परमेश्वर ने यज्ञ की सिद्धि के लिए तीन देवों -- अग्नि, वायु और सूर्य को क्रमश: ब्रह्मामय और सनातन तीन वेदों -- ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को प्रकट किया।

प्रत्येक देव परम त्रिमूर्ति का एक रूप है या उससे पैदा हुई सत्ता या उस पर आश्रित शक्ति है तथा प्रत्येक देवी विश्व शक्ति या परमशक्ति का एक रूप है। रूस के प्रसिद्ध लेखक मैक्सिम् गोर्की

ने देवताओं के सम्बन्ध में लिखा है कि सारी देवमाला कल्पना की उत्पत्ति है। यथार्थ से उत्पन्न समस्त गुणों को एकत्र करके एक मूर्ति बना ली जो देवत्व को प्राप्त हो गई। वास्तव में हिन्दु संस्कृति के अनुसार देवताओं की उत्पत्ति मानव समाज के कल्याण के लिए ही हुई है। देवी-देवताओं का मूल उद्देश्य जगत की भलाई रहा है। सामाजिक प्राणियों को सन्मार्ग पर ले जाने, नीति पर चलने, धर्म का पालन करने और सदाचार का आचरण करने हेतु ही ईश्वर ने देवताओं को उत्पन्न किया है। सूर्य, वायु, अग्नि, वरुण आदि देवताओं का कार्य जग भलाई है। ये सभी जड़ व चेतन दोनों प्रकार के जीवों को समान रूप से अपने कर्म का प्रकाश फैलाते हैं।

हिमाचल प्रदेश में देवी-देवताओं ने अलग-अलग स्थानों पर भिन्न-भिन्न रूप में जन्म लिया है। इनके अवतरित होने के सम्बन्ध में देव भार्थाओं तथा कथाओं में वर्णन मिलता है। इनके जन्मदिवस तथा इन्द्रपुरी से लौटने पर गूर द्वारा इनके अवतरित होने की भार्थाएं सुनाई जाती हैं। देवगाथा के रूप में इन भार्थाओं में देवी-देवताओं के जन्म, विकास और प्रसार का महत्वपूर्ण वृत्तांत छिपा होता है। इन्हें बखाण, गरणी, गूण, चिरालिंग कहते हैं। इस दिन प्रातः ही देवी-देवता के रथ को नए सिरे से मढ़ा जाता है। रथ का पूर्ण श्रृंगार करने के बाद वाद्य-यन्त्रों के वादन से देवता का आह्वान किया जाता है। इस समय सब हारियान (वे लोग जो देवता के आधिपत्य क्षेत्र में रहते हैं -- सं.) इकट्ठा हो जाते हैं। फिर गूर जगती पर बैठकर भार्था सुनाना शुरू करता है।

भार्था में देवी-देवताओं के इस भू-भाग पर प्रकट होने, स्थापित होने, रहने तथा अन्य क्षेत्रों से आने का विवरण रहता है। अधिकांश देवी-देवताओं के प्रकट होने के सम्बन्ध में 'गौमाता' का विशेष योगदान रहा है। इस सम्बन्ध में कथा प्रायः इस प्राकार रहती है --

गांव का एक ग्वाला जंगल में गौएं चराने ले जाता है। उनमें से एक गाय एक झाड़ी के पीछे जाती है और स्वतः दूध गिराकर वापिस आती है। ग्वाले को इसका पता नहीं चलता। शाम को जब घर की गृहणी उस गाय को दूहती है तो उसके थनों से दूध नहीं निकलता। तब उस ग्वाले पर शक किया जाता है कि शायद वह दिन में स्वयं दूह कर गाय का दूध पी जाता होगा। ग्वाले को प्रताड़ना दी जाती है या उसे ऐसा न करने की हिदायत दी जाती है। तब झूठे आरोप से दुःखी और हैरान परेशान ग्वाला गाय का पीछा करता है, तो देखता है कि गाय एक झाड़ी के पीछे एक शिला पर या स्थान पर स्वतः दूध भर रही होती है। यह देखकर वह अचम्भित रह जाता है। इस घटना की सूचना वह अपने मालिक व गांव वालों को देता है। गांव वाले इसे दैवी शक्ति मानकर उस स्थान की खुदाई करते हैं। खुदाई में उन्हें एक पिण्डी, शिवलिङ्ग. या पत्थर की मूर्ति मिलती है। वे जितना खोदते जाते हैं, उस प्रस्तर मूर्ति का निचला सिरा नहीं मिलता। कभी उसका निचला भाग मिल जाता है तो वहां से जल धारा प्रस्फुटित होती है। खोदते समय उपस्थित व्यक्तियों में से किसी एक का शरीर कांपने लगता है। वह उछलने लगता है और वह उपस्थित लोगों को बताता है कि वह अमुक देवता है। वह वहां रहना चाहता है तथा उसका मंदिर बनाकर उसकी पूजा की जाए। तब सभी लोग श्रद्धा से उस देवता के प्रकट होने पर अपने को धन्य समझकर पूजा अर्चना करके अपना अराध्य मानना शुरू करते हैं। इस प्रकार उस देवता की पूजा शुरु हो जाती है और वह वहां का अधिपति बन जाता है।

इस तरह कई बार उक्त स्थान पर दूध गिराने का काम एक गाय करती है, कई बार ग्वाले की सभी गाएं बारी-बारी से कृत्य करती हैं। कई देवताओं के मंदिर उसी देवता के निर्देश पर उसी स्थान पर बनाए जाते हैं तथा कई मंदिर किसी और जगह बनाए जाते हैं। फिर भी उस स्थान को सुरक्षित मानकर देवता कभी-कभी वहां आते रहते हैं। जिस दिन खुदाई करते समय देवता का निशान प्रकट होता है उसे उसका जन्मदिन माना जाता है।

इस प्रकार देवताओं की उत्पत्ति कुल्लू के दियार गांव के त्रियुगीनारायण, मथाण के बिजली महादेव, गज़ां की दोचामोचा, नग्गर की बालात्रिपुरासुन्दरी, छैऊंर के मंगलेश्वर महादेव, रायला के लक्ष्मीनारायण और शिमला के चनावग के देवता हरशिंग आदि प्रमुख हैं।

खेतों में निड़ाई-गुड़ाई करते समय भी बहुत से देवताओं के मोहरे या मूर्तियां निकली हैं। इसमें कोई एक महिला अपने खेत में निड़ाई-गुड़ाई कर रही होती है। पास ही उसने अपना छोटा शिशु भी लिया होता है। दोपहर में शिशु को प्यास लगती है। वह मां से पानी पीने की इच्छा व्यक्त करता है। मां की ममता को पीड़ा होती है कि वह अपने बच्चे को जल भी नहीं पिला सकती क्योंकि आस-पास भी कोई जल

का स्रोत नहीं होता। बच्चे को प्यास से व्याकुल होते देख वह भगवान् से प्रार्थना करती है कि काश! यहां पर जल निकल जाता तो अपने बच्चे की प्यास बुझा पाती। वह ऐसा सोच ही रही होती है कि तभी उसकी किलणी से टन से कोई वस्तु टकराती है। वह किलणी से उस वस्तु को बाहर निकालती है तो देखती है एक अष्टधातु या प्रस्तर का मुखौटा है। उसके साथ ही वहां से जलधारा भी प्रस्फुटित होती है। मां के साथ यह शिशु कई स्थान पर बालक होता है तथा कई स्थान पर बालिका होती है। कभी-कभी वह बालक या बालिका स्वयं उठकर हाथ में कुदाली लेकर खेल-खेल में खेत खोदने लगता/लगती है तो उसकी कुदाली से मोहरा टकराता है जिसे निकालने पर जलधारा भी प्रस्फुटित होती है। जल निकलने पर मां बच्चे को जल पिलाती है तथा स्वयं भी जी भर कर जल पीती है।

मुखौटे को घर लाती है और अनाज की कोठरी में रखती है। सुबह जब कोठरी को खोलती है तो कोठरी जो अनाज से आधी भरी हुई थी पूरी तरह भर गई होती है। इस चमत्कार को देखकर वह अचम्भे में पड़ जाती है और मुखौटे को इसका श्रेय देकर उसकी देवरूप में पूजा करना शुरु करती है, जिससे उसके घर में अन्न-धन की वृद्धि होने लगती है। मुखौटे की सूचना जब गांव वालों को मिलती है तो वे भी उसे देखने आते हैं। तभी उनमें से किसी एक व्यक्ति को खेल आती है और वह कहता है कि वह इस मुखौटे के रूप में अमुक देवी या देवता है तथा यहां रहना चाहता है। तब गांव वाले भी उसकी पूजा करना शुरु करते हैं। उसके मंदिर व रथ का निर्माण करते हैं। कई बार गांव वाले उस मूर्ति को देवता न मान कर उसकी पूजा करने में आनाकानी करते हैं। या उसे देवता मानने से इन्कार करते हैं। तब वह देवता नाराज़ होकर गांव पर पहाड़ गिरा कर दबाता है या बाढ़ से नष्ट करता है। केवल उसी स्त्री का परिवार बचा रहता है जिसे वह मुखौटा मिला होता है और जो परिवार उस देवता की अराधना करते हैं। बाद में वे ही परिवार बढ़ जाते हैं। देवता की ख्याति भी दूर-दूर तक हो जाती है। मन्दिर व रथ का निर्माण होता है। इस प्रकार उत्पन्न देवताओं में कुल्लू जनपद के नीणू गांव के देवता नारद निगना, कमांद की देवी मडासना, खोखन के आदि ब्रह्मा, भुट्ठी के थान नारायण, नग्गर की देवी भारन्ती, धमाण के धमाणी नारायण हैं।

खेत में ही हल चलाते हुए हल की नोक से भी कई देवताओं के मुखौटे प्रकट हुए हैं। एक व्यक्ति खेत में हल चला रहा होता है। अचानक उसके हल की नोक में कोई चीज़ फंसती है और उसके बैल रुक जाते हैं। पूरा ज़ोर लगाने पर भी बैल हल चलाने में असमर्थ होते हैं। जब वह ज़मीन को देखता है कि क्या फंसा है तो उसे एक मूर्ति, शिला या पिण्डी दिखाई देती है। तभी एक अदृश्य आवाज़ आती है और कहती है कि वह अमुक देवता है। इस स्थान पर हमारा मंदिर बनाया जाए। तब वह व्यक्ति गांव जाकर उन्हें इस घटना की सूचना देता है। गांव वाले आते हैं और उस जगह खुंदाई करके उस मूर्ति या प्रस्तर पिण्ड को निकालते हैं। यदि धातु की मूर्ति हो तो वह निकल आती है और यदि प्रस्तर पिण्डी हो तो उसके मूल का पता नहीं चलता। गांव वाले उसी स्थान पर मंदिर का निर्माण करते हैं। कई बार हल चलाने वाला व्यक्ति गूंगा होता है। जैसे ही उसके हल की नोक मूर्ति से टकराती है तो उसकी वाणी प्रस्फुटित होती है और वह बोलने लगता है। हल की नोक से प्रकट होने वाले देवताओं में कुल्लू जनपद के गौशाल गांव के गौतम ऋषि, शुरू की देवी शबरी, त्रैहण के खोडू महादेव, लोट (कुल्लू -- सं.) के पंजवीर, पेखड़ी के लोमश ऋषि, करेरी के वीर वराधी, दलासणी की श्यामा काली आदि हैं।

एक गांव में एक सरसों का पौधा घर के आंगन में उगता है। घर की कन्या उसे पहले दिन तोड़ती है तो दूसरे दिन वह उतना ही बड़ा दिखाई देता है। दूसरे दिन भी उस पौधे को सब्ज़ी बनाने के लिए काटा जाता है तो अगले दिन भी वह उतना ही बड़ा दिखाई देता है। कई दिनों तक यही क्रम चलता है। जब घर वालों को इसके बारे में मालूम होता है तो वे उस पौधे को जड़ से उखाड़ते हैं। उसके नीचे उन्हें मुखौटा मिलता है। वे उसे अपने घर में माश की कोठरी में रखते हैं। कोठरी में थोड़े से माश होते हैं। परन्तु अगले दिन जब कोठरी खोल कर देखी जाती है, वह माश से भरी हुई मिलती है, जिसके शीर्ष भाग में मुखौटा होता है। तब परिवार वाले इसे देवता का चमत्कार मानते हैं। एक व्यक्ति के शरीर में देवता प्रवेश करके उसके मुख से अपने देवता होने का नाम सहित परिचय देता है तथा उस गांव को अपना स्थान बनाने की बात कहता है। कालान्तर में सभी गांववासी उसे पूजना प्रारम्भ करते हैं। कुल्लू के काईस गांव की देवी दसमी वारदा इसी तरह प्रकट हुई है।

....क्रमशः अगले अंक में

प्राचीन भोट साहित्यों में शिव-पार्वती की कथा

(तिब्बत के 33वें ऐतिहासिक पुरुष सम्राट स्रोङ-चन-गम्पो (जन्म 617 ई.) द्वारा प्रणीत 'मणि कबुम' नामक पवित्र ग्रंथ से उद्धृत एवं हिन्दी में अनूदित)
अनुवादक - के. अंगरूप 'लाहुली'।

भगवान् गौतम बुद्ध को परिनिर्वाण प्राप्त किए अभी बहुत समय नहीं हुआ था। मगध के किसी जनपद में महापाल नामक एक ब्राह्मण और उनकी पत्नी मानव रूप में एक ज्ञान-डाकिणी (देवकन्या) पति-पत्नी के रूप में निवास कर रहे थे। कालान्तर में देवकन्या की कोख से क्रमशः तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से ज्येष्ठ दो भाई सनातन हिन्दू धर्म में श्रद्धा रखते थे, और सब से कनिष्ठ बौद्ध धर्म को मानता था। वे अपने-अपने सिद्धांत को लेकर नित्य-प्रति तर्क-वितर्क किया करते थे। माता अपने बच्चों के इस तरह के खण्डन-मण्डन की बातों से परेशान सी रहती थी और खिन्न होती थी।

एक दिन वह अपने पुत्रों से कहने लगी, "हे मेरे प्यारे बच्चो! तुम तीनों भाई दिन-प्रतिदिन वाद-विवाद में पड़े रहते हो। इससे मुझे बड़ी परेशानी महसूस होती है। यदि तुम लोग शीत से पीड़ित हो तो इनको धारण कर लो, और यदि क्षुधा से संत्रस्त हो तो इन मात-भुजाओं को खा लो। तुम लोगों के रोज़-रोज़ का यह तकरार हमें अच्छा नहीं लगता है।" इस पर कनिष्ठ पुत्र कहने लगा "मां! हम तीनों भाई किसी ऐहिक विषय को लेकर कलह नहीं कर रहे हैं, वरन् सिद्धांत की बातों पर वाद-विवाद कर रहे हैं। अब आप ही हमें बताएं कि बौद्ध और सनातन धर्म में कौन सा उत्तम है?" इस पर माता कहने लगी कि यहां से उत्तर, हिमालय के पर्वत शिखर कैलाश पर महादेव जी निवास करते हैं। मैं तुम्हारे इन प्रश्नों के उत्तर पाने के हेतु तुम तीनों भाईयों को उनके पास भिजवाती हूं। यह कहकर उन्होंने अपने बच्चों की पनहियों पर 'पादलेपसिद्धि' का उबटन पोत कर पहना दी। उस पादलेपसिद्धिमय पनहियों को धारण करते ही तीनों सहोदर भाई क्षण भर में कैलाश पर्वत पर जा पहुंचे। हिमालय की विशालता, भव्यता, उज्ज्वलता तथा ऊंचाई आदि को देखकर वे मोहित हो गए। वहां पर उन्होंने देखा कि एक सुन्दर देवबाला वन्य-पुष्पों को चुन-चुन कर एक रत्नजटित पात्र में डाल रही है। पहले तो वे तीनों भाई उस देवबाला की कार्यवली को देखते ही रह गए। कुछ क्षण पश्चात् वे उनसे पूछने लगे, "हे सुन्दरी! तुम कौन हो? इन पुष्पों को तुम किसलिए बटोर रही हो?" देवबाला कहने लगी कि मैं शिव-पत्नी उमादेवी की दासी हूं। इस पूर्णमासी के दिन आर्य अर्हत्गण ऋद्धि बल से आकाश मार्ग होकर शिवजी के प्रासाद में प्रवचन करने के निमित्त पधारने वाले हैं। ये पुष्प उन्हीं आर्यों के आगमन पर उन्हें अर्पण करने के लिए एकत्रित कर रही हूं।

उसके बाद वे तीनों भाई देवबाला के साथ शिवजी के महल पर गए। संयोग से उसी दिन महल में पूर्णिमा

की पूजा चल रही थी। आर्य अर्हत् लोग ऋद्धि बल से महल में पहुंच चुके थे। उन तीनों भाईयों ने देखा कि आर्य अर्हत् वृन्द रत्नमय बहुमूल्य आसनों पर विराजमान हैं। उन्होंने यह भी देखा कि कैलाशपति शिव और पार्वती दोनों बड़े ही विनीत भाव से अर्हतों को अर्ध्य देकर उनपर पुष्प छितरा रहे हैं और प्रवचन के लिए याचना कर रहे हैं। इस प्रकार समस्त धार्मिक अनुष्ठान समाप्त होने के पश्चात् अर्हत् वृन्द पुनः आकाश मार्ग से चले गए तो वे तीनों भाई कैलाशपति महादेव जी के समक्ष उपस्थित हो कर पूछने लगे कि हे महाराज! आप हमें यह बताएं कि बौद्ध और सनातन धर्म में से कौन सा धर्म उत्तम है? इस पर शिवजी बोले कि सभी प्रकार के सिद्धान्तों में बौद्धों का मतवाद सर्वश्रेष्ठ है। मैं स्वयं बौद्ध धर्म के माध्यम से बुद्धत्व प्राप्त करना चाहता हूं। यद्यपि आठ प्रकार की लौकिक सिद्धियों को प्रदान करने की मुझ में शक्ति निहित है। परन्तु परलोक के उपकारक धर्मों को मैं भी नहीं जानता हूं। इसीलिए तो मैं आर्य अर्हतों का सेवा-सत्कार किया करता हूं। सनातन धर्म में लौकिक शान्ति के अतिरिक्त पारलौकिक जीवन को सुधारने का प्रावधान नहीं है। स्वर्ग, यानि देवलोकों की प्राप्ति कुशल कर्मों के फलस्वरूप भी हो जाती है। वह अनागत जीवन को सुधारने की प्रक्रिया नहीं है।

इन तीनों भाईयों ने शिवजी की बातों को ध्यान से सुना और स्वदेश (मगध) लौट आए। घर पहुंचने के पश्चात् वे अपनी जननी से कहने लगे कि माता जी! अब हम तीनों भाई बौद्ध धर्म के अनुयायी हो गए हैं। इस पर माता बड़ी प्रसन्न हुई और कहने लगी कि बौद्ध धर्म की श्रेष्ठता से मैं पूर्व परिचित थी, परन्तु ज्येष्ठ दोनों भाईयों की अड़ियल नीतियों के कारण मैंछ कुछ नहीं कह पा रही थी। अतः शंका समाधान के लिए तुम लोगों को कैलाशपति के पास भेजना ही श्रेष्ठ समझा।

एवमेव अब तीनों भाई विहार वासी होकर रहने लगे। सभी भाईयों ने अपने जीवन में एक-एक विहार निर्माण करवाने की प्रतिज्ञा ली। इस प्रकार सबसे ज्येष्ठ भाई ने अपनी प्रतिज्ञानुसार गृद्धकूट के वेणुवन का विहार और मझोले भाई ने वहां से पश्चिम् दिशा की ओर वाराणसी में मृगदाय वन में धर्मचक्र महाविहार की स्थापना की। इस पर कनिष्ठ भाई सोचने लगा, "जयेष्ठ दोनों भाईयों ने अपने-अपने विहार के निमित्त श्रेष्ठ एवं पवित्र प्रकार के प्राचीन खण्डहरों की भूमियों को निर्वाचित किया है। मैं कनिष्ठ ठहरा, इसी नाते मेरे लिए कोई विशेष खण्डहर की भूमि बची ही नहीं है जहां मैं अपना विहार स्थापित कर सकूं।"

इस पर माता कहने लगी, "बेटा! तुम इस प्रकार अप्रसन्न न रहो। तुम्हारी सोच सम्यक् नहीं है। उपर्युक्त दो खण्डहर भूमियों से भी विशिष्टतर बोधिवृक्ष के सामने वाली पवित्र भूमि तुम्हारे लिए अवशिष्ट है। तुम उस स्थान में जाकर बुद्ध देव की एक भव्य प्रतिमा, जो पूर्व दिशा की ओर अभिमुख हो, निर्मित करो।"

इस प्रकार कनिष्ठ पुत्र ने अपनी माता के वचनानुसार बोधिवृक्ष के सामने की समतल पवित्र भूमि पर भगवान् तथागत की एक सुन्दर मूर्ति स्थापित की थी।

नोट :-

शाक्य मुनि भगवान् गौतम बुद्ध की वही अप्रतिम प्रतिमा आज भी बौद्ध जगत की सर्वश्रेष्ठ मूर्तियों में से है। प्रतिवर्ष सहस्रों श्रद्धालु उपासक-उपासिकाएं अपनी श्रद्धा सुमन अर्पित करने के निमित्त यहां (बोधगया) पहुंचते हैं और सर्व-सत्वार्थ कल्याणचित्त उत्पाद कर अपने को धन्य मानते हैं।

कुलूत-जनपद में अप्सराओं और नागों का वर्चस्व

- तेजराम नेगी

महाकाव्य एवं ऐतिहासिक ग्रन्थ, रामायण और महाभारत के अध्ययन से यह जानकारी प्राप्त होती है कि प्रागैतिहासिक काल में दक्ष प्रजापति की पुत्री 'कद्रू' का विवाह महर्षि कश्यप से हुआ। कद्रू ने कश्यप ऋषि के संसर्ग से हज़ारों नागों को जन्म दिया जिनमें मुख्य नागों के नाम इस प्रकार हैं -- शेषनाग, अनन्तनाग, वासुकिनाग, तक्षकनाग, कूर्मनाग तथा कुलिकनाग आदि। इन्हीं की वंश परम्परा से आगे चल कर हज़ारों नागों की वंशवृद्धि हुई। नागों की उत्पत्ति और पतन-विनाश से सम्बन्धित विषय का इतिहास तो बहुत विस्तृत है। प्रस्तुत लेख का मुख्य आशय तो केवल वासुकिनाग और अप्सराओं की गतिविधियों का वर्णन ही अपेक्षित है।

वासुकिनाग का कुलूत-जनपद में प्रवेश --

प्रागैतिहासिक काल में 'समुद्र-मन्थन' में वासुकिनाग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। महाभारत के आदि पर्व के अन्तर्गत आस्तीक-पर्व में हज़ारों नागों की जन्म स्थली अथवा निवास स्थल 'रमणीयक-द्वीप' कहा गया है। यह 'रमणीयक-द्वीप' विश्व के किस द्वीप में स्थित है? विश्वस्त रूप से कहना कठिन है। यह मनोहर एवं भव्य द्वीप विश्वकर्मा द्वारा निर्मित एक सुन्दर प्रदेश है।

एक बार जब पाण्डवों के प्रपौत्र तथा सम्राट परीक्षत के पुत्र जन्मेजय ने, तक्षकनाग को समाप्त करने के उद्देश्य से 'सर्पयज्ञ' का आयोजन किया, तब इस यज्ञ में बहुत से या हज़ारों नाग सर्प-यज्ञ के अग्नि-कुण्ड में जल मरने लगे, परन्तु मुख्य अपराधी 'तक्षक नाग' इन्द्र की शरण में चला गया और शेष शक्तिशाली मुख्य-मुख्य नागों ने अपने परिवारों समेत अन्य देव-स्थलों की ओर प्रस्थान किया।

कई बार जनश्रुतियां भी ऐतिहासिक तथ्यों की कड़ियों को जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कुल्लू जनपद में स्थित 'शिरढ़' गांव, जो कुल्लू शहर से लगभग 14-15 किलोमीटर दूर मनाली-कुल्लू राजमार्ग से बायीं ओर रायसन-पुल के बस स्टॉप की पश्चिम दिशा में स्थित है। इसी गांव के एक वयोवृद्ध पुरोहित एवं कुलूत संस्कृति के प्रणेता श्री शिव कुमार कात्यायन जी की एक पाण्डुलिपि के अनुसार सर्वप्रथम वासुकिनाग 'रमणीक-द्वीप' से उत्तरी भारत होते हुए कुलूत देवभूमि में पधारे। अपनी पाण्डुलिपि में इन्होंने वासुकिनाग का रमणीक द्वीप से कुल्लू की ओर प्रस्थान के बारे में कोई कारण नहीं बताया है। परन्तु वासुकिनाग का कुल्लू जनपद में प्रवेश और यहां पर कई स्थानों पर अज्ञातवास की कहानी से यह जानकारी अवश्य प्राप्त होती है कि वासुकिनाग की इस क्षेत्र में अनेक अन्य स्थानीय देवताओं के साथ देवोपम गतिविधियां रही हैं।

(अ)ठारा नागों की गाथा के अनुसार वासुकिनाग सर्वप्रथम कुल्लू जनपद में बन्जार के निकट 'थाटी बीड़' में रहे, तत्पश्चात नगर के निकट हलाण में ठहरा। इस गाथा के अनुसार वासुकिनाग के आगमन के समय का ज्ञान अनिश्चित है।

ऐतिहासिक काल-गणना के अनुसार सम्राट जन्मेजय का सर्प-यज्ञ द्वापर युग के अन्त में, तथा कलियुग के आरम्भ में हुआ था। इस सर्प-यज्ञ में हज़ारों-लाखों की संख्या में अग्नि-कुण्ड में नागों की आहुतियां पड़ चुकी थीं। वासुकिनाग को अपने तपोबल के प्रभाव से तथा 'ठारा-करडू' देवताओं के आशीर्वाद से ही जीवन-दान मिला है। इसी काल-खण्ड में कुलूत-जनपद में वासुकिनाग की गतिविधियां रही हैं। ठारा नागों की गाथा के अनुसार इस क्षेत्र में वासुकिनाग के अठारह नागपुत्रों की उत्पत्ति हुई है।

कहानी इस प्रकार है -- सर्वप्रथम वासुकिनाग 'सौरा' गांव में पधारे, जो कुल्लू शहर के निकट काईस गांव से लगभग 7-8 किलोमीटर की दूरी पर एक उच्च शिखर के दामन में स्थित है। अपने तपोबल के प्रभाव से वासुकिनाग ने यहां एक अत्यन्त सुन्दर जल-सरोवर की स्थापना की।

उस दिव्य सरोवर को प्रकट हुआ देख कर स्थानीय जन-मानस ने इसे तीर्थ का महत्व देकर स्नान करने लगे।

इसी सौर गांव की एक महिला का ससुराल कोठी मनाली के गांव 'गोशाल' में था। वहां के निवासी लौधवंश के एक परिवार से कन्या का जन्म

हुआ, जिसका नाम 'कमला' रखा गया। जब वह अपनी यौवनावस्था में पहुंचने वाली थी, एक बार वह अपनी माता के साथ, उसके ननिहाल के गांव 'सौरा' में आई। तब कमला की माता ने अपनी बेटी को इस सरोवर का महत्व और महात्म्य बताया, फिर वहां स्नान भी करती रही और अपनी बेटी से आग्रह किया कि तुम्हारी इच्छा हो तो यहां प्रतिदिन स्नान किया करना, तुम्हारी मनोकामनाएं अवश्य पूर्ण होंगी।

इस सरोवर के किनारे पर एक छोटा सा 'अंगू' का पेड़ था। उस पेड़ की जड़ के निकट जल में एक कमल का फूल था, जो किसी के हाथ नहीं आता था, कमला वहां नित्य प्रतिदिन स्नान करने जाया करती, तथा उस फूल को निहारा करती। एक दिन वह जब स्नान करने सरोवर में उतरने लगी, तब वह फूल भी लड़की की ओर बढ़ने लगा। कमला उस फूल को प्राप्त करने आगे बढ़ने लगी, वह दिव्य पुष्प धीरे-धीरे पीछे हटने लगा, उस रूपसी कन्या को ऐसा आभास होने लगा कि वह सरोवर ही पीछे हटता जा रहा है। आगे बढ़ने पर सरोवर की गहराई बढ़ती जाती थी, सरोवर में डूबने के भय के कारण वह पीछे हट कर वापिस तट पर पहुंच जाती, वह पुष्प भी अपने स्थान पर दिखाई देता। इस प्रकार छः दिन तक उस कन्या और दिव्य फूल के मध्य जल-कलोलि होती रही।

वह पुष्प के रूप में वासुकिनाग था। उस नाग ने जन्मेजय के सर्प-यज्ञ के अग्नि-कुण्ड की आहुति में गिरने के भय से इस पुष्प के रूप में सरोवर में अपने आप को छिपा रखा था, जिस प्रकार प्राचीन काल में 'इन्द्र' ने ब्रह्म-हत्या के भय से कमल की नाल में अपने आप को छिपा रखा था। सातवें दिन उस कमल के फूल-रूपी वासुकिनाग और उस अनिन्द्य सुन्दरी कमला के मध्य वही जल-क्रीड़ा आरम्भ हो गई। इस दिन यह पुष्प भी अधिक सुन्दर और आकर्षक लग रहा था, कन्या का चेहरा भी प्रफुल्लित था। वह जल में उतरी और अपनी नज़रें उस दिव्य पुष्प पर गड़ा दी। सरोवर में वह आगे बढ़ रही थी, पुष्प भी अपने स्थान से आगे बढ़ता दिखाई दिया। वह कन्या आगे बढ़ती गई और फूल आगे बढ़ता दिखाई दिया। वह कन्या आगे बढ़ती गई और बढ़ती रही, उसे आज सरोवर की गहराई का बिल्कुल भी आभास नहीं हो रहा था। उसकी मस्ती से भरी आंखें केवल पुष्प पर ही टिकी हुई थीं। पुष्प उस कन्या को ललचाने और आकर्षित करने के लिए कभी आगे बढ़ता और कभी पीछे हटता। परन्तु लड़की केवल आगे ही बढ़ रही थी। जब फूल और उस लड़की की आपसी दूरी बहुत कम रह गई, तो लड़की ने एक ऊंची छलांग लगाकर उस फूल को झपटना चाहा। वह लड़की इस दिव्य फूल पर इतनी मोहित थी कि मध्य सरोवर के निकट पहुंच गई। लड़की की इस प्रकार की तीव्र-आकांक्षा को देख कर वासुकिनाग ने अपना दिव्य-रूप धारण कर लड़की को अपनी आगोश में लेकर उस सरोवर में लुप्त हो गया। लड़की को नाग के आगोश में जाने पर दिव्यानुभूति का आभास हो रहा था, अन्त में उसे अपने आप को सरोवर के अन्दर वासुकिनाग के दिव्य महल में पाया तथा अपने सम्मुख एक दिव्यपुरुष के दर्शन हुए। तत्पश्चात वे दोनों परिणय सूत्र में बन्ध गए।

इस सरोवर के ऊपर एक टीले पर एक घड़ा बनाने वाले कुम्हार का घर था और उसका नाम 'आली' था। वह प्रतिदिन इस सरोवर में उन दोनों प्रेमियों की क्रिया-कलापों को देखा करता था। सातवें दिन, उस फूल द्वारा लड़की का जल-सरोवर के अन्दर अपहरण-काण्ड भी देखा था।

बहुत देर तक लड़की की प्रतीक्षा करने के पश्चात ननिहाल वालों ने लड़की की खोज खबर ली, परन्तु किसी के कानों में कोई खबर नहीं थी। सब नाते-रिश्तेदार रोने चिल्लाने लगे। नाना-नानी तथा माता-पिता का रोना चिल्लाना सुनकर उस आली कुम्हार ने लड़की के माता-पिता आदि सब सम्बन्धियों को लड़की और फूल के सम्बन्ध में पूरा समाचार एवं कहानी बताई।

.....क्रमशः

(लड़की और वासुकिनाग में आगे चलकर क्या गुल खिलते हैं, इसके लिए इसकी अगली कड़ी देखिए।)

गाथा के रूप में गाई जाने वाली गूगा कथा

– किशोरी लाल शर्मा

भारतवर्ष में देवताओं की पूजा कई प्रकार से की जाती है। देश के राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, गुजरात, हिमाचल प्रदेश में सांपों से रक्षा के लिए गूगा पूजा की जाती है। मुख्य रूप से गूगे की पूजा जादू से रक्षा, इच्छापूर्ति तथा सर्प रक्षा के लिए की जाती है। हिमाचल प्रदेश के ज़िला बिलासपुर, कांगड़ा, हमीरपुर, मण्डी, ऊना आदि में गूगे को विशेष रूप से पूजा जाता है। मण्डी ज़िले में यह पूजा सरकाघाट, सुन्दरनगर, जोगिन्द्रनगर, मण्डी, करसोग में प्रचलित है। प्रदेश के चम्बा, सोलन, सिरमौर के कुछ भागों में भी गूगा पूजा की जाती है।

प्रदेश में विभिन्न स्थानों में गूगा गाथा के गाए जाने पर भी अन्तर पाया जाता है। इसका कारण है कि इस गाथा के गाए जाने को स्थानीय भाषा तथा बोलियों ने प्रभावित किया है। इस गाए जाने वाली गाथा से ही गूगे की कथा के रहस्य का पता चलता है। गूगा गाथा में गुरु गोरखनाथ तथा माता बाछल का उल्लेख होता है जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इन दोनों का गूगा कथा से विशेष सम्बन्ध है।

शीला नगरी में सिया नाम की कुम्हारी रहती थी। एक बार वह बर्तनों को पकाने के लिए गोबर के उपले लेकर आई। जब गोबर को पलटा देकर देखा गया तो उसके अन्दर एक छोटा सा मन्दिर दिखाई दिया जिसके अन्दर एक नन्हा बालक खेल रहा था। जब लोग इकट्ठे होकर हैरानी से देखने लगे तो बालक भागकर जंगल में चला गया। यह बालक गुरु गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गुरु गोरख नाथ 'शिव' की सन्तान थे क्योंकि गोबर के बीच में शिवजी का वीर्य गिरा हुआ था। उनकी माता स्वयं पृथ्वी थी। गुरु गोरखनाथ के नौ लाख शिष्य हुए, जिनमें प्रमुख शिष्य का नाम 'काहनी' था।

दिल्ली के राजा पथौरी को शिकार खेलते समय जंगल में तीन कन्याएं मिलीं। युवा होने पर इनमें से बाछल तथा आछल को दक्षिण तथा पश्चिम क्षेत्र के राजाओं से विवाह कर दिया गया। बाछल के जब कोई सन्तान न हुई तो आलु नामक तेली ने उसे सलाह दी कि वह गुरु गोरखनाथ की भक्ति करे। केवल वे ही उसकी इच्छा पूरी कर सकते हैं। बाछल ने एक पण्डित को गुरु गोरखनाथ के पास मारु देश आने का निमन्त्रण देने भेजा। स्वयं गुरु की भक्ति में लग गई। उस समय गुरु गोरखनाथ भौंखर नामक देश में बारह साल की समाधि में बैठे हुए थे। गोरखनाथ ने मछेन्द्रनाथ को अपना गुरु मान कर गुरु दीक्षा ली और अपने नौ लाख चेलों को मारु देश जाने का आदेश दिया। रास्ते में गुरु गोरखनाथ को कई कठिनाइयों से गुज़रना पड़ा। वे अपने चेलों सहित शीला नगरी में पहुंचे। वे सिया कुम्हारी के घर भिक्षा मांगने गए। गुरु ने करूआ यानि घड़ा मांगा। परन्तु सिया ने बताया कि छः महीने से पहले नहीं पक पाएगा। गुरु ने अपने कान की बाली का चाक बनाया और स्वयं मिट्टी खोद कर डिब्बिया तैयार की। वहीं पर नौ लाख चेलों का स्नान करवाया। जब यह देखकर सिया ने गुरु का नाम पूछा तो वह उसका वही पुत्र निकला जो गोबर से निकला था। गुरु ने माता का उद्धार कर दिया। रास्ते में गुरु के चेले काहनी ने गंगा को एक छोटी तुम्बड़ी में बन्द कर दिया।

जब वे मारु देश पहुंचे तो वे बाछल के बाग में बैठ गए। बाछल गुरु गोरखनाथ से पुत्र फल प्राप्त करना चाहती थी। गुरु गोरखनाथ के पास दो ही ऐसे फल थे। काछल की शक्ल बाछल की तरह ही थी। काछल के भी सन्तान न थी। अतः काछल ने गुरु से बाछल के रूप में धोखे से फल प्राप्त कर लिए। जब बाछल फल लेने गुरु गोरखनाथ के पास पहुंची तो गुरु उससे नाराज़ हो गए। उन्होंने उसे यह कह कर लालची कहा कि उसने पहले ही दो फल ले लिए हैं। परन्तु बाछल ने गुरु को सभी कुछ साफ बता दिया। गुरु गोरखनाथ के पास समस्या यह थी कि उनके पास अन्य पुत्र फल नहीं था। अतः वे अन्तर्ध्यान होकर शिवजी के पास पहुंचे। परन्तु ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ने उन्हें फल देने में असमर्थता प्रकट की। गोरखनाथ अपनी ज़िद पर अड़े रहे। विष्णु भगवान् ने 'अजिपाल' राजा से उसका बेटा 12 साल तक उधार लेकर उसे फल के रूप में गुरु गोरखनाथ को दे दिया। गुरु गोरखनाथ ने वह फल बाछल को दिया और कहा कि तेरा यह पुत्र सांपों का दुश्मन होगा।

बाछल ने फल के छिलके फैंक कर फल खा लिया। गोली ने इन छिलकों को चूस कर फैंक दिया। फिर इन छिलकों को चूहड़ी ने सूंघा और मैदान में खड़ी एक घोड़ी के पास फैंक दिया। घोड़ी ने इन्हें खा लिया। फल खाने के पश्चात् बाछल गर्भवती हो गई। 12वें महीने बाछल के गर्भ से लड़के का जन्म हुआ। उसका नाम गूगा रखा गया। फल के छिलके

चूसने से गोली के गर्भ से लड़की का जन्म हुआ जिसे गुगड़ी कहा गया। वह गूगे की बहन कहलाई। घोड़ी ने एक अत्यन्त सुन्दर बछेरे को जन्म दिया जिसका नाम नीला रखा गया जो गूगे का साथी बना। गूगे का जन्म देर से इसलिए हुआ कि उसकी मां बाछल अपने मायके में थी। गूगा नहीं चाहता था कि उसका जन्म नाना के यहां हो। गर्भ से उसने माता बाछल को कहा कि वह अपने मारु देश चली जाए। तब जाकर गूगे ने जन्म लिया। जैसा कि गूगा मण्डली इस गाथा में गाती है --

'मैं तिजो बोलां बाछल माता, मुड़ी रंग महलां जो जायां।
जे मैं जमहगा नानकड़े घर, नानकु नाओं रखुआणा।
जन्म लैंगा जिस गढ़ मारुए, गूगा नाओं रखुआणा।
धौला पीला गुड्डिया जोड़े, उपर बैठीगी बाछल माया।

बाछल की बहन काछल बाछल तथा उसके पुत्र गूगा से इर्ष्या करती थी। वह पाताल लोक गई और उसने कलिहर नाग को गूगे के विरुद्ध भड़काया। कलिहर ने सांपों की फौज बनाकर गूगे पर आक्रमण कर दिया। गूगा उस समय झूला झूल रहा था। गूगे ने सांपों को पकड़-पकड़ कर उनका खून चूसना शुरु किया। सांपों के कुल का नाश समीप था। जब नागराज वासुकि को इस बात का ज्ञान हुआ तो उसने कुल को नाश से बचाने के लिए गूगे से क्षमा याचना की। उसने अपने कुल की रक्षा की मांग की। वासुकि ने गूगे को वचन दिया कि आज के बाद सभी नाग गूगे की आज्ञा में रहेंगे। जहां गूगे का नाम लिया जाएगा वहां उनका बस नहीं चलेगा। इस वचन के पश्चात् गूगे ने उन्हें छोड़ दिया।

गूगा की सगाई मालप के राजा की लड़की सुरिहल से कर दी गई परन्तु बाद में लड़की के बाप ने सुरिहल का विवाह कछु देश के राजा के यहां करने का प्रस्ताव स्वीकार किया। क्योंकि गूगा कौरु देश के राणा का पुत्र था जब कि कछु देश का राजा मालप के राजा के समान था। जब गूगा को इस बात का पता चला तो वह नीले घोड़े पर सवार होकर गुरु गोरखनाथ को ढूंढने निकल पड़ा। गुरु ने गूगा की समस्या के समाधान के लिए अपने चेले काहनी को भेजा। काहनी ने इसके लिए कलिहर नाग के बेटे तक्षक की सेवा ली। तक्षक कौए के रूप में सुरिहल के महल पहुंचा जहां नहाते समय तक्षक ने सुरिहल को काट लिया। सांप के काटे जाने पर सुरिहल मूर्छित हो गई। राजा ने उपचार के सभी प्रयास किए किन्तु कोई भी लाभ नहीं हुआ। तभी तक्षक ब्राह्मण के भेष में आया। उसने तन्त्र विद्या से राजा को बताया कि वह तभी जीवित होगी अथवा बच सकती है यदि उसे विवाह में मारु देश के राणा गूगा को दिया जाए। अत: राजा मालप ने उस दिन से आठ दिन बाद विवाह करने का निश्चय किया। यह सुनकर गूगा प्रसन्न हो गया कि सुरिहल की शादी नवमी को उसके साथ होगी। गुरु गोरखनाथ समाधि में बैठकर शिवजी के पास पहुंचे। उन्होंने शिवजी से भस्म कड़ा, पौणखटोहलू, धुंधु नाद और अमृत जल लिया। गूगा को महल पहुंचने के लिए छ: महीने का समय लगेगा जब कि उसकी शादी मात्र आठ दिन बाद होगी। जब गूगे ने यह समस्या गुरु के समक्ष रखी तो गुरु ने उसे पौणखटोहलु दिया। इसके द्वारा वह इस यात्रा को कुछ ही समय में पूरी कर देगा। यदि कहीं लड़ाई हो गई तो दुश्मन को भस्म करने के लिए भस्म कड़ा दिया। मृत मनुष्य को पुनर्जीवित करने के लिए अमृत जल तथा बारात में देवता बुलाने के लिए धुन्धुनाद दिया। गुरु ने कहा कि वह निश्चिंत होकर घर जाए। गूगा नीले घोड़े सहित पौणखटोहलू में बैठा और कुछ ही क्षण में अपने कौरु देश पहुंच गया। उल्लेखनीय है कि कौरु देश कामरूप अर्थात् असम को कहा गया है। गूगा अपनी शादी की तैयारी में लग गया।

गूगा काहनी के साथ राजा मालप के यहां चला गया। राजा के कर्मचारियों ने उन दोनों का तिरस्कार किया। जब उन्होंने गूगा तथा काहनी चेले को बाग के अन्दर नहीं आने दिया तो काहनी ने योग शक्ति से दरवाज़े को तोड़ दिया। ब्राह्मण ने अपनी ब्रह्म शक्ति से नौ लाख बच्चे एकत्रित कर मृगछाला में लपेट कर गुरु गोरखनाथ के पास भेज दिए। काहनी और गूगा पर पत्थर बरसाए गए। शहर की सारी स्त्रियां अपने बच्चों के लिए राजा के पास रोने लगीं। राजा दु:खी होकर काहनी चेले के समक्ष गया और क्षमा के लिए प्रार्थना की। काहनी ने सभी बच्चे लौटा दिए। राजा ने गूगा का विवाह सुरिहल से करने की प्रतिज्ञा की। काहनी ने गुरु गोरखनाथ को बुला लिया। उधर सुरिहल की माता भोंपालो भी योगियों के डेरे में आई। उसने योगियों को फटकारा कि इतने प्रबन्ध किए हैं परन्तु तीन ही लोग बारात में आए हैं। जब लग्न के लिए बारात चली तो गुरु ने धुंधु नाद बजा कर शिवजी सहित सभी देवताओं को बुला लिया। राजा की ओर से बारात के लिए भोजन का सन्देश

आया। गुरु ने पहले दो बालकों को भोजन करने भेजा। शनि और शुक्र बालक के रूप में भोजन करने लगे। उन्होंने सारे राज्य का अनाज खा डाला। मालप राजा गुरु के चरणों में गिर पड़े। गुरु के अशीर्वाद से राजा के भण्डार फिर से भर गए। गूगे ने शादी कर ली और सुरिहल राणा के महल में पहुंच गई। उधर काछल द्वारा धोखे से प्राप्त किए गए फल से अरजुन और सुरजन नाम के दो पुत्र पैदा हुए। माता काछल की मृत्यु के उपरान्त उनका पालन माता बाछल ने किया था। वे दोनों गूगे से इर्ष्या करते थे। वे गूगे के राज्य का आधा भाग चाहते थे जिसके लिए गूगा तैयार न था। माता बाछल ने भी गूगे से आग्रह किया कि अरजुन तथा सुरजन (जौडुओं) को आधा राज्य दे दें। परन्तु गूगा अपनी ज़िद पर अड़ा रहा। अन्त में दोनों जौडू दिल्ली में अपने नाना पथौरी बादशाह की शरण में गए। नाना ने गूगे को सन्देश भेजा कि वह राज्य का बंटवारा कर दे। उसने गूगे को दिल्ली आने को कहा। नाना ने उसे मारने का प्रयत्न भी किया परन्तु गूगा बच निकला। गूगा अपने महल में पहुंचा और सो गया। पीछे से अरजुन, सुरजन तथा पथौरी राजा लाखों की सेना लेकर मारु देश पहुंच गए। जौडुओं ने महल के नज़दीक से तीर मारा जो गूगे के पलंग में लगा। गूगा सोया हुआ था। जब सुरिहल को इसका पता चला तो उसने हीरामन तोते को गुगड़ी के पास भेजा कि वह अपने भाई को जगाए। गुगड़ी गूगा के महल की ओर दौड़ी तो पथौरी की स्त्री सेना ने उसका रास्ता रोका। गुगड़ी ने एक लाख स्त्री सेना को परास्त कर दिया। गुगड़ी ने गूगा को जगाया। युद्ध की तैयारियां शुरु हुईं। माता बाछल ने गूगे से वचन लिया कि वह जौडुओं को तब तक जान से नहीं मारेगा जब तक कि वे गूगे की जान पर आक्रमण न करें।

गूगा नीले घोड़े पर सवार होकर लड़ाई के लिए 'डुहगी डाबरों' पहुंचा। घमासान युद्ध हुआ। कई दिनों तक लड़ाई चली। अन्तं में गूगे ने शत्रु सेना को पराजित कर दिया। अरजुन तथा सुरजन ने मिलकर गूगे पर प्रहार किया। गूगा ने उनका प्रहार रोका और दोनों के सिर धड़ से अलग कर दिए। उसने अपने नाना को भी मार दिया। कई दिनों के पश्चात् वह महल में लौटा। युद्ध से उसकी शक्ल काली पड़ गई थी। उसने माता बाछल से पानी मांगा परन्तु वह उसे पहचान न पाई। उसने गूगे से पानी पीने से पहले युद्ध

का हाल जानना चाहा। गूगे ने बताया कि उसने जौडुओं को मार दिया है। माता ने पुत्र को आदेश दिया कि वह उसी स्थान पर मर जाए जहां उसने जौडुओं को मारा है। गूगे ने अरजुन तथ सुरजन के सिर माता के पास छोड़ दिए। स्वयं 'डुहंगी डाबरों' पहुंच गया। उसने दोनों जौडुओं को जलाने का प्रबन्ध किया। परन्तु दुविधा में फंस गया कि बिना सिर के लाशें कैसे जलाई जाएं। वे तो माता बाछल के वहां छोड़ दिए थे। वह विलाप करने लगा। माता ने उसे कभी भी मुंह न दिखाने का आदेश दिया था। और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा। तभी उसकी चीख सुनकर

कहीं से राजा मोरध्वज उपस्थित हुए। सारा हाल सुन कर उन्होंने माता बाछल से साधु के भेष में जौडुओं के सिर लिए और गूगे को दे दिए। गूगे ने जौडुओं का दाह संस्कार किया और उनकी अस्थियां गंगा में प्रवाहित कीं। फिर वह उसी स्थान पर आ गया जहां जौडुओं का वध किया था। उसने धरती माता से प्रार्थना की कि वह फटे और अपनी गोद में उसे स्थान दे। धरती माता ने कहा कि यदि वह मुसलमान होता तो अवश्य स्थान देती परन्तु वह हिन्दू है, अत: वह उसे अपने में समाने नहीं देगी। अब गूगा मक्का-मदीना गया वहां से धर्म परिवर्तन कर फिर उसी स्थान पर पहुंचा। उसने वसुन्धरा, यानी धरती माता को पुकारा कि उसे अपने अन्दर समेट ले। धरती फट गई और गूगा वसुन्धरा माता की गोद में समा गया। सबसे पहले इस घटना को माता बाछल के चरवाहे हंसपाली ने देखा। उसने दौड़कर माता बाछल को सूचना दी। बाछल तथा सुरिहल विलाप करने लगीं। उनका क्रन्दन सुनकर नन्द महर की लड़की बिजली जो उस समय आकाश में चमक रही थी बिह्वल हो उठी। उसने सुरिहल को सहायता देने की पेशकश की। सुरिहल ने गूगे का पता जानना चाहा। बिजली ने सुरिहल को बताया कि गूगा पाताल में ख्वाजा पीर के साथ हार-पासा खेल रहा है। सुरिहल ने अपने 'सत' से परमात्मा का सिंहासन हिला दिया। भगवान ने नारद को सुरिहल का कष्ट जानने के लिए भेजा। नारद ने प्रभु को वास्तविकता बता दी। भगवान ने गुरु गोरखनाथ को गूगे के पास भेजा कि वह सुरिहल के लिए कौरु देश चला जाए। गूगे ने यह कह इन्कार किया कि वह माता बाछल के वचन से बन्धे हैं। जब गुरु ने उसे विवश किया तो गूगा छुप कर जाने के लिए तैयार हो गया। गुरु गोरखनाथ ने उसे वरदान दिया कि गूगा के अंगों से रात को जो ज्योतियां जलती हैं उन्हें इच्छानुसार जला तथा बुझा पाएगा। गूगा रात को सुरिहल के महल में छुप कर जाता। अब सुरिहल श्रृंगार करने लगी। माता बाछल ने इसका बुरा माना कि विधवा श्रृंगार करने लगी है। माता ने उसके चरित्र पर सन्देह किया। जब वह यातनाएं न सह सकी तो उसने रात को गूगे के आने की बात बता दी। एक रात जब गूगा बाहर जाने लगा तो माता बाछल ने उसे पकड़ लिया और कहा कि अब वह उसे नहीं जाने देगी। गूगे ने वचन दिया कि अगले दोपहर को सभी लोगों को दिखेगा फिर वह वापिस न जाएगा। परन्तु कोई उससे कुछ न कहे और न ही रोके-टोके। इस वचन के पश्चात् माता ने उसे जाने दिया।

दूसरे दिन गूगे के दर्शन के लिए सारी जनता इकट्ठा हो गई। वे गूगे के आने की प्रतीक्षा करने लगे। जब दोपहर में सूर्य ठीक सिर के ऊपर चमका तो नीले घोड़े के अगले सुम्ब, मुंह का भाग, गूगा के सिर का कुछ भाग ज़मीन में से ऊपर निकलने लगा। लोग अति प्रसन्न हुए। वे अपने को नहीं रोक सके। प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने शोर मचा दिया। अत: गूगे का अन्य हिस्सा ज़मीन से बाहर नहीं निकल पाया। गूगे तथा नीले के शरीर का जो भाग ज़मीन से बाहर निकला था वह पत्थर में बदल गया। उसके पश्चात् आकाशवाणी हुई कि वे उसी स्थान पर गूगा मढ़ी बनाएं, प्रतिवर्ष वहां गूगा नवमी अर्थात् गूगा के जन्मदिन पर पूजन किया करें। उससे पहले आठ दिन तक गूगा गाथा गाएं, तभी गूगा नवमी को दर्शन दिया करेगा। सांपों से रक्षा करेगा। लोगों ने वैसा ही किया। गूगा की पूजा जाहरपीर के रूप में की जाने लगी। गूगे की यह कथा प्रतिवर्ष रक्षा-बन्धन से लेकर गूगा नवमी तक गूगा मण्डली द्वारा गाई जाती है। यह मण्डली गांव-गांव जाकर गूगा गाथा को गाती है। गूगा गाथा की कथा अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग ढंग से बताई जाती है। गूगे की उत्पत्ति, शादी, लड़ाइयां तथा मृत्यु के विषय में भी विभिन्न कथाएं हैं। जिनमें काफी भिन्नताएं पाई जाती हैं। इन कथाओं तथा गाथाओं पर स्थानीय तथा क्षेत्रीय प्रभाव पड़ा है। गूगा मण्डली में 8 से लेकर 15 सदस्य होते हैं जो गूगा, गूगड़ी को उठाए हुए होते हैं। इसके अतिरिक्त मण्डली ढोलक, डमरू, मिट्टी का बर्तन 'महटली', कांसे की थाली, लोहे का सांगल या चिमटा, गुगल धूप अवश्य लेकर चलती है। गूगा मंडली इस गाथा को लय तथा संगीतात्मक ढंग से गाती है जिसके कारण इसे सुनने की जिज्ञासा बढ़ जाती है। सारी गूगा कथा गाथा के रूप में गाई जा सकती है परन्तु यह काफी विस्तृत है। अत: गूगा मंडली अलग-अलग घरों में अलग-अलग प्रसंग को गाती है। अब इस गाथा को गाने की प्रथा कमज़ोर पड़ती दिख रही है। परन्तु प्रदेश के कई भागों में गूगा गाथा विधि के अनुसार गाई तथा उत्सुकता के साथ अभी भी सुनी जाती है।

गांव थाच, डा. पांगणा,
तह. करसोग, ज़िला मंडी 175046

लाहुल घाटी में सेब की खेती की सम्भावनाएं

(डॉ. जयन्त कुमार, वैज्ञानिक, फल विभाग, क्षेत्रीय बागवानी अनुसंधान केन्द्र, बजौरा, कुल्लू-175125, दूरभाष - 01905-87248)

सेब हमारे प्रदेश का प्रमुख फल है। इसकी खेती से किसानों को बहुत लाभ होता है। जैसे-जैसे दुनियां के मौसम में बदलाव आ रहा है वैसे ही लाहुल घाटी में सेब की खेती की सम्भावनाएं बढ़ती जा रही हैं। लाहुल घाटी के बहुत से इलाके सेब की खेती के लिए बहुत ही उपयुक्त हैं। सेब को जिस तरह का मौसम चाहिए वह लाहुल घाटी में उपलब्ध है। इसलिए यहां का सेब गुणवत्ता के आधार पर अति उत्तम, ठोस तथा टिकाऊ पाया गया है। इसलिए यहां किसानों को सेब के बगीचे लगाने चाहिए।

हमारे प्रदेश में सेब की रॉयल डिलीशियस, रैड डिलीशियस तथा रिच-ए-रैड किस्में मुख्य रूप से उगाई जाती हैं। ये किस्में रंग रूप और स्वाद में अन्य किस्मों से बेहतर हैं। परन्तु इन किस्मों में कुछ खामियां भी हैं जैसे - पौधे लगाने के बहुत देर बाद फल लगना, प्रतिवर्ष सामान्य फसल न लगना तथा फूल आने के समय मौसम की खराबी के कारण फसल पर बुरा प्रभाव पड़ना। विदेशों में इन प्रजातियों को लगाना बंद किया जा रहा है तथा इनके बदले डिलीशियस की अधिक उपज देने वाली, उत्तम गुणों वाली और व्यापारिक तौर पर महत्वपूर्ण कुछ किस्मों को उगाया जा रहा है। इन किस्मों के फल जल्दी पकते हैं तथा रंगदार और आकर्षक भी होते हैं। इनमें कुछ प्रजातियां स्पर किस्म की हैं, जिनके पौधे बौने रहने के साथ-साथ पैदावार भी अधिक देते हैं। सेब की नई डिलीशियस किस्मों का विवरण नीचे दिया गया है।

वांस डिलीशियस --

यह प्रजाति डिलीशियस प्रजाति की कलिका उत्परिवर्तन से निकली है। इसके फल लम्बूतरे, धारीदार और गहरे लाल रंग के होते हैं। फलों में रंग जल्दी और एक समान आता है। इसके फल देखने में रॉयल डिलीशियस के समान होते हैं परन्तु इससे लगभग 10-12 दिन पहले पक जाते हैं तथा पैदावार लगभग दुगुनी होती है। इस प्रजाति को कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों में लगाने की सिफारिश की जाती है। इसके फल 110 दिन में पक कर तैयार हो जाते हैं।

टॉप रैड --

यह किस्म शॉट वैल डिलीशियस से कलिका उत्परिवर्तन द्वारा निकली है। फल आकार में बड़े, लम्बूतरे, धारीदार और लाल रंग के होते हैं। इनका गूदा हल्के पीले रंग का, मीठा व रसदार होता है। यह प्रजाति रॉयल से 4-5 दिन पहले पक जाती है तथा पैदावार रॉयल से, दो से अढ़ाई गुणा अधिक होती है। लाहुल घाटी के लिए यह जाति बहुत ही उपयुक्त है।

स्पर किस्में --

स्पर प्रजातियों के पौधे साधारण प्रजातियों से भिन्न होते हैं। इनके पेड़ अन्य किस्मों से छोटे अर्थात बौने होते हैं। इनका आकार बीज मूलवृन्त पर भी सामान्य पौधों से आधा, दो तिहाई या तीन चौथाई होता है। जिससे इन पर बागवानी कार्य सुगमतापूर्वक तथा कम मूल्य पर किए जा सकते हैं। इन पौधों की कांट-छांट भी कम मूल्य पर की जा सकती है। इन पौधों की कांट-छांट भी कम करनी पड़ती है। इसके पौधे सीधे बढ़ने वाले और टहनियां लम्बी होती हैं। फलों का आकार लम्बूतरा तथा हर वर्ष फल लगते हैं। इनकी पैदावार रैड और रॉयल डिलीशियस मुख्य किस्मों से अधिक होती है तथा इन प्रजातियों में रंग अधिक आता है। इनके पौधों को 4-5 मीटर की दूरी पर लगाना पड़ता है।

क्षेत्रीय बागवानी अनुसंधान केन्द्र बजौरा में इन किस्मों का परीक्षण सम्बन्धी अनुसंधान कार्य चल रहा है। इसके आधार पर रैड चीफ व ऑरीगन स्पर किस्में उन्नतशील पाई गई हैं।

रैड चीफ --

इस किस्म के फल लम्बूतरे होते हैं। फलों का रंग गहरा लाल व बारीक धारियां भी होती हैं जो कि अधिक रंग आने पर कम नज़र आती हैं। यह प्रजाति रॉयल डिलीशियस से 12-13 दिन पहले तैयार हो जाती है। अच्छी पैदावार के लिए फलों का विरलन (थिनिंग) ज़रूरी है।

ऑरीगन स्पर --

इस किस्म के फल भी लम्बूतरे और गहरे लाल रंग के होते हैं। फलों में धारियां कम होती हैं। यह

प्रजाति रॉयल से 4-5 दिन पहले पक जाती है। अच्छी पैदावार के लिए फलों का विरलन करना आवश्यक है।

परागण की नई किस्में

टाईडमैन्स वरसैस्टर --

यह वरसैस्टर पीयरमैन और मैकिन्टाश की संकर किस्म है। फल गोलाकार लाल रंग के, तन्तु विन्यास नरम, स्वाद खट्टा, खुशबूदार तथा परागण के लिए उत्तम किस्म है। फलों की तुड़ाई कई बार करनी पड़ती है, नहीं तो फल झड़ जाते हैं। यह प्रजाति रॉयल से एक महीना पहले तैयार हो जाती है।

गोल्ड स्पर --

यह प्रजाति गोल्डन डिलीशियस की कलिका उत्परिवर्तन से निकली है। यह स्पर प्रजाति है। फल गोल्डन की तरह लगते हैं। परन्तु पैदावार अधिक होती है। इसके फलों में थोड़ा लाल रंग आ जाता है। इसे 4-5 मीटर की दूरी पर लगाना पड़ता है। यह प्रजाति गोल्डन के साथ-साथ पकती है।

लाहुल घाटी के लिए ये प्रजातियां बहुत ही उपयुक्त हैं। जहां फूल खिलने के समय पर मौसम खराब होता है वहां 25 प्रतिशत परागण किस्में लगानी चाहिए। और जहां मौसम खराब न होता हो वहां 11 प्रतिशत परागण प्रजातियां लगाई जाती हैं।

उपरलिखित प्रजातियों के पौधे क्षेत्रीय बागवानी अनुसन्धान केन्द्र, बजौरा (जो कि झीड़ी में स्थित है) से अक्तूबर व नवम्बर के महीने में लाहुल घाटी के किसान ले सकते हैं।

सेब के फल छेदक कीट की रोकथाम

लाहुल, किन्नौर आदि क्षेत्रों में इस फल छेदक कीट का काफी प्रकोप देखा गया है। इससे ग्रस्त सेब से एक सफेद रंग के गोंद की बूंद निकली रहती है। मध्य जून के आस-पास जब बागीचे में इस तरह के लक्षण दिखाई दें तो निम्न कीटनाशकों का छिड़काव करें और 15 दिन के अन्तराल पर दोहराएं।

1. लैबोसिड (फैस्थियोन) 1/2 मि.ली./1 लीटर पानी में
   या
2. डैसिस (डैकामेथ्रिन) 1 मि.ली./1 लीटर पानी
   या
3. सुमिथियॉन/फौलीथियॉन 1 मि.ली./1 लीटर पानी
   या
4. क्लोरपाईरीफॉस 1 मि.ली./1 लीटर पानी

सौजन्य - डॉ. जे.पी. शर्मा, कीट विज्ञानी, सेऊबाग

मित्रता

मित्रता मानव हृदय की एक स्वाभाविक वृत्ति है। प्रत्येक मनुष्य ऐसे साथी की खोज में रहता है जिसके समक्ष वह अपने मनोभावों को उजागर कर सके और वह अपने छिपे हुए भावों को नि:शंक होकर कह सके। जहां मनुष्य अपने आप को अकेला महसूस न करे और मित्रों के सहयोग से अपनी जीवन यात्रा को सहज, सरल और निरापद बना सके, पर अब ऐसे मित्र नहीं मिलते। मिलते हैं तो सिर्फ ऐसे जो कभी न भरने वाले ज़ख्म दे जाते हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक सिसरो ने लिखा है "इस दुनिया में मित्रता से बढ़कर कुछ भी मूल्यवान नहीं है मनुष्य के लिए" पर अब यह सिर्फ पढ़ने व सुनने में ही अच्छा लगता है क्योंकि अब मित्रता का मोल, अनमोल नहीं अब तो पैसे के समकक्ष भी नहीं है।

शायद अब इस दुनिया में मित्रता नाम की कोई चीज़ है ही नहीं। हर तरफ स्वार्थ पूर्ति, अपना ऊल्लू सीधा करने, अपने लाभ के लिए मित्रता करने वाले ही मिलते हैं पर सच्चे मित्र तो ढूंढने से भी नहीं मिलते। महात्मा गाँधी जी जिन्होंने कहा था "सच्चे मित्र मिल जाना मनुष्य के लिए देवी वरदान है" पर अब तो सिर्फ ऐसे लोगों क़ी मित्रता नसीब होती है जिनकी मित्रता श्राप सी लगती है; जैसे सूर्य उदय के पीछे छाया की तरह पहले तो लम्बी चौड़ी होती है फिर क्रम से घटती जाती है। कहते हैं, किसी भी मनुष्य की मित्रता तब तक पूर्ण नहीं होती, जब तक कि वह अपने मित्र की अनुपस्थिति, गरीबी, आपत्ति में सहायता नहीं करता। यहां तक मृत्यु के पश्चात भी उसके अधिकारों की रक्षा नहीं करता।

पर यह सब अब इतिहास बन चुकी है। यहे बातें सिर्फ किताबों तक सीमित है। आम ज़िन्दगी में इनका कोई महत्व नहीं। अब यह सिर्फ सुनने में ही अच्छा लगता है। अब तो सिर्फ ऐसे मिलते हैं जो बीच मझधार में, मुसीबतों में झोंककर मुँह फैर लेते हैं। सचमुच अब सच्ची मित्रता का अस्तित्व समाप्त हो चुका है। अब यकीनन बनावटी मित्रों की सत्ता स्थापित हो चुकी है जो एकदम गठबन्धन सरकार की तरह है। जो कभी भी टूट सकती है।

'रौहेल'

अफगानिस्तान के गृह युद्ध का बामियान की प्राचीन विशाल बुद्ध-मूर्तियों पर काली छाया

-छेरिंग दोरजे

गत एक चौथाई शताब्दी से अफगानिस्तान एक भयानक गृह युद्ध के दौर से गुज़र रहा है। यदि हम पिछले पौने दो सौ वर्षों की मध्य एशिया की ऐतिहासिक घटनाओं पर दृष्टि डालें तो उस समय के संसार की दो महान शक्तियां इंगलैण्ड और ज़ारशाही रूस मध्य एशिया के राज्यों और खान शासित प्रदेशों पर अपना-अपना प्रभुत्व जमाने में लगे थे। तत्कालीन इतिहासकारों ने इसे 'महाक्रीड़ा' (great game) की संज्ञा दी थी। (देखें 'करगिल युद्ध आगामी सहस्राब्दी में खतरे की घंटी', चन्द्रताल, अप्रैल-दिसम्बर 1999)। ऐसा प्रतीत होता है कि इतिहास इन घटनाओं को दोबारा दोहराने जा रहा है। परन्तु इस बार पुराने नायकों के स्थान पर संसार की महाशक्ति अमेरिका ने ले ली है।

शीत युद्ध के अन्तिम चरण में सोवियत रूस ने अफगानिस्तान पर कब्ज़ा जमा लिया था। इन्हें खदेड़ने के लिए अमेरिका ने पाकिस्तान का भरपूर सहयोग लिया। अमेरिका और पाकिस्तान के कूटनीतिज्ञों के सामूहिक षड़यन्त्र का प्रतिफल तालिबान का गठन था, जिसमें अफगानिस्तान और अन्य मुस्लिम जगत के कट्टरपंथी जिहादियों की एक जंगजू श्रेणी को अफगानिस्तान में युद्ध करने को झोंक दिया गया। इस प्रकार अफगानिस्तान विदेशी मुस्लिम जिहादियों की नकल-व-हरकत का केन्द्र बना और संसार के सबसे अधिक खतरनाक और मानव समाज के दुश्मन सऊदी ओसामा बिन लादेन और उसकी अल-काईदा संगठन को शान्तिप्रिय संसार में आतंक फैलाने का अवसर मिला। अफगानिस्तान में ओसामा को मुल्ला उमर जैसा विश्वस्त स्थानीय सहायक मिला जो उसके हर इशारे पर नाचता रहा।

तालिबान वह भयंकर आधुनिक भस्मासुर है, जिसने पाकिस्तान की कोख से जन्म लिया और जिसका अमेरिकी दूध से पालन-पोषण हुआ तथा अफगानिस्तान के कुरुक्षेत्र से संसार की शान्ति को भंग किया।

अमेरिका ने दिल खोलकर तालिबान को युद्ध सामग्री और आर्थिक सहायता दी और पाकिस्तान की नियमित सेनाएं युद्ध प्रशिक्षण देने के साथ-साथ स्वयं भी तालिबान के साथ मिलकर युद्ध में सम्मिलित हुईं। इस प्रकार अन्त में सोवियत रूस की सेनाओं को अफगानिस्तान से बाहर करने में सफल हुए। परन्तु अफगानिस्तान को गृह युद्ध के अंधकार में धकेल दिया।

अफगानिस्तान के अधिकतर भागों में तालिबान का कब्ज़ा हो गया था, फिर काबुल के उन्मादी शासकों को देश में मुस्लिम शरीयत कानून द्वारा राज्य चलाने का जनून सवार हो गया। इस प्रकार अफगानिस्तान में मध्य युगीन अरब-मुस्लिम कानून लागू कर दिया गया। देश की आधी जनता, अर्थात महिलाओं को शिक्षा की सुविधा से वंचित कर दिया गया। उन्हें बुरका पहनने पर मजबूर किया गया। रेडियो और टेलीविजन केन्द्र बन्द कर दिए गए। कानून मुल्ला और काज़ियों के गिर्द घूमने लगा। मदरसों में केवल मुस्लिम दीनी शिक्षा ही पढ़ाई जाने लगी।

अब तालिबान की कुदृष्टि प्राचीन अफ़गानिस्तान की उन्नत सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहरों और समारकों पर पड़ी, जो पूर्व-मुस्लिम कालों में वहां निर्मित हुए थे। तालिबान के सम्मुख हर वह चिन्ह जो गैर मुस्लिम है, को ध्वस्त करना ही पुण्य का कार्य था। बामियान घाटी में निर्मित बुद्ध देव की दो सबसे बड़ी मूर्तियों को तालिबान ने तोपों द्वारा (फरवरी 2001) ध्वस्त कर दिया ताकि अफ़गानिस्तान में स्थानीय अफ़गानों का रसूक कम होकर गैर मुलकी अरब, पाकिस्तान, चैचेन और अन्य मुस्लिम देशों के आतंकी लोगों का कब्ज़ा हो जाए, जिनका सर्वोच्च अगुआ ओसामा बिन लादेन था।

बामियान की जगत प्रसिद्ध दो विशाल बुद्ध मुर्तियों के इतिहास को समझने के लिए हम यहां प्राचीन अफ़गानिस्तन के इतिहास पर सरसरी दृष्टि डालेंगे। भारतवर्ष की भान्ति अफ़गानिस्तान भी एक प्राचीन देश है। वर्तमान मज़ारे-शरीफ के समीप प्राचीन बल्ख नगर (Bactria) का खंडहर पड़ा है। बल्ख से हिरात तक फैले हुए आर्यों में से ही एक कबीला था, जो हिन्दुकुश के दुर्गम तथा हिमाच्छादित दर्रों को लांघ कर कपिश, कुभा और स्वात की उपत्यकाओं से होता हुआ भारत में प्रविष्ट हुआ था। बल्ख की गिनती संसार के प्राचीनतम नगरों में की जाती है। इस नगर को मादरे शहर (शहरों की मां) कहा जाता था। ज़रथुस्टनामा के अनुसर इस नगर की नींव ईरान के

राजा लोहरास्प (नवीं शताब्दी ई.पू.) ने डाली थी। इसी नगर में ही लोहरास्प-पुत्र राजा गुस्ताप ने पारसी धर्म (अग्नि पूजक) के शास्ता ज़ोराप्टर से अग्नि पूजन धर्म की दीक्षा ली थी। तिब्बती बौद्ध धर्म के ग्रंथों में उल्लिखित ताज़िक ओल-मो-लुङ-रिङ भी यही नगर लगता है। प्राचीन समय से बल्ख में ताज़िकजनों की संख्या सबसे अधिक थी। ताज़िक और अफ़गान आर्यवंशी हैं। तिब्बती बौद्ध धर्म की पुस्तकों में कपिश देश (अफ़गानिस्तान) की बोली को देव भाषा (संस्कृत) कहा गया है। यह नगर के अखमंशी (Acka-manid) राजाओं (छटी और पांचवी शताब्दी ई.पू.) का उत्तर पूर्व एशिया का केन्द्र रहा था।

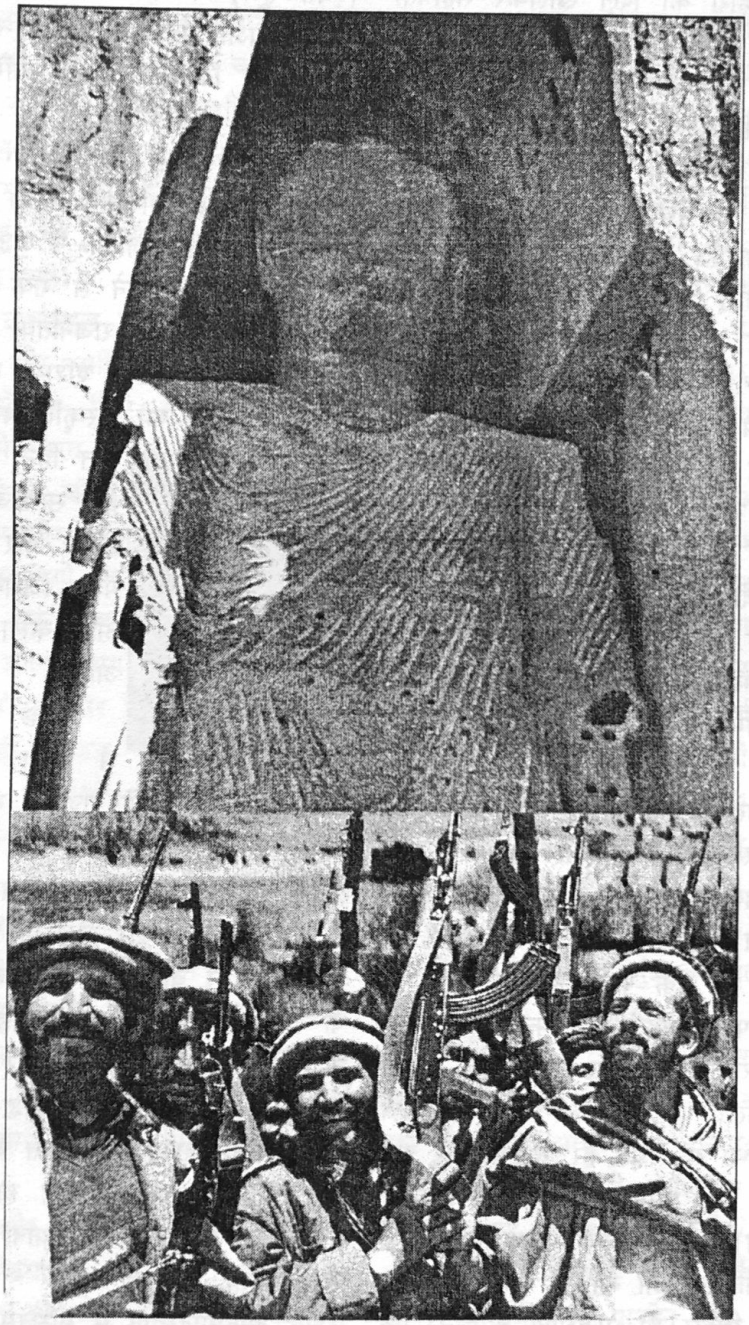

सिकन्दर महान के पश्चात तो यह नगर यूनानी राजाओं के मुख्य केन्द्रों में था। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में यह मिनांदर (मिलिन्द) की राजधानियों में था। अशोक महान का एक विशाल शिलालेख कंधार के समीप मिला है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि बौद्ध धर्म का प्रचार अफ़गानिस्तान में अशोक महान के समय हुआ था। तक्षशिला (टेकसला) उस समय को संसार के महान विद्या केन्द्रों में एक था। यहां यवन-यूनानी और ईरान-भारतीय संस्कृति के मिश्रण से विश्व प्रसिद्ध गंधार संस्कृति का जन्म हुआ था।

ईसा पूर्व 135 में शकों ने गंधार पर हमला कर सिकन्दर के राज्यपालों को परास्त कर गंधार पर राज्य किया। प्राय: एक वर्ष पश्चात पश्चिमी चीन के कुशान धुमंतू जाति के लोग, जिन्हें यूची भी कहा जाता था, ने युद्ध में शकों को परास्त कर समूचे क्षेत्र की प्रभुसत्ता संभाल ली थी। इनका घुमंतू जाति से संबंध होने के कारण गंधार की उन्नत सभ्यता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। और समय के बीतने के साथ-साथ यहां के समाज में पूर्णत: मिल गए। कनिष्क कुशानों में अत्यधिक बुद्धिमान और योद्धा राजा हुए। उसके राज्य में तीन राजधानियां; कपिश (कोह दामन), पुरुषपुर (पेशावर) और मथुरा थे। कनिष्क ने बौद्ध धर्म को स्वीकरा था। वह अन्य धर्मो पारसी, हिन्दू और देववाद का भी बहुत सम्मान करता था। वह तत्कालीन महान बौद्ध दार्शनिक और कवि अश्वघोष से बहुत प्रभावित था।

कहा जाता है कि बामियान को बौद्ध संस्कृति का केन्द्र बनाने में कनिष्क का सबसे अधिक हाथ था। बामियान में अब तक की सबसे विशाल की मानव हाथों निर्मित संसार बुद्धदेव की दो मूर्तियां हैं। इनमें से छोटी मूर्ति कही जाने वाली की लम्बाई 120 फुट और बड़ी मूर्ति की लम्बाई 175 फुट है, जिन्हें चट्टान को काट-काट कर

बनाया गया है। फ्रांस के पुरातत्व वेता अल्बर्ट फ़ौचर, जिसने गंधार कला का सूक्ष्म अध्ययन किया था, का कहना है कि 120 फुट लम्बी मूर्ति दूसरी या तीसरी शताब्दी में बनाई गई है, और लम्बी मूर्ति तीसरी या चौथी शताब्दी में। कनिष्क के पश्चात स्थानीय सामन्तों और मध्य एशिया जाने वाले व्यापारियों ने बामियान के बौद्ध विहारों की दिल खोलकर सहायता की थी और सातवीं से आठवीं शताब्दी तक शाही खानदान के राजाओं ने बामियान पर राज किया जो बौद्ध धर्म के अनुयायी हुए हैं।

भौगौलिक दृष्टि से बामियान दक्षिण एशिया, यूरोप और भारत की ओर से मध्य एशिया की व्यापारिक "रेश्म मार्ग" से पड़ता है। यहां दक्षिण एशिया, यूरोप और भारत के व्यापारी जो मध्य एशिया के साथ व्यापार किया करते थे। कुछ दिन यहां ठहर कर अपने असबाव का दोबारा गांठें बांधते थे और जानवरों को आराम दिया करते थे।

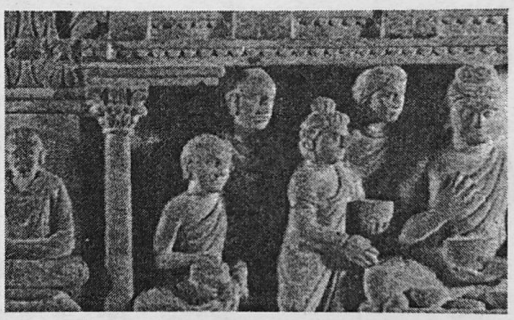

बामियान के बारे हमें विस्तृत जानकारी दो चीनी बौद्ध यात्री फ़ाइयान (चौथी सदी ई.) और ह्यूनचाङ (सातवीं सदी ई.) के यात्रा वर्णन से प्राप्त होती है। ह्यूनचाङ चीन से भारत आते समय 622 ई. में बामियान पहुंचे थे और अपनी यात्रावली (सि-यू-कि) में लिखते हैं कि बामि़यान (फेन-येन-न) राज्य 2000 ली पूर्व से पश्चिम की ओर 300 ली उत्तर से दक्षिण को है। इसके चारों ओर हिमाच्छादित पहाड़ी श्रृंखलाएं (को-ए-बाबा) हैं। राजधानी पहाड़ी ढलान पर स्थित छः और सात ली तक फैली हुई है। यहां गेहूं की खेती होती है, परन्तु बहुत कम फल-फूल वाले वृक्ष हैं। यहां के चरागाहों में घोड़े और भेड़ें पलती हैं। जलवायु शीत लिए हुए हैं। लोग शुष्क बर्ताव करने वाले और असभ्य से लगते हैं। खालों और ऊन से बने कपड़े पहनते हैं। धार्मिक आस्था में 'त्रिरतन' (बुद्ध धर्म और संघ) को सर्वोच्च मानते हैं। इसके अतिरिक्त सैकड़ों देवी देवताओं की भी पूजा करते हैं। यहां दस से अधिक विहार हैं। राजधानी के उत्तर-पूर्व की ओर पहाड़ी चट्टानों पर 140 या 150 फुट लम्बी बुद्ध मूर्ति है। इसकी स्वर्णिम चमक चारों दिशाओं से दिखाई पड़ती है। पूर्वी विहार के पास 100 फुट ऊंची शाक्य-मुनि की धातु की मूर्ति है। राजधानी से दो-तीन ली दूरी पर एक अन्य विहार में बुद्धदेव की 100 फुट से अधिक लम्बी शय्यासीन मूर्ति महापरिनिर्वाण को दर्शाते हुए हैं। भिक्षुगण हीनयानी लोकोक्तरवादिन के अनुयायी हैं और उनकी संख्या लगभग एक हज़ार है।

425 ई. में मध्य एशिया के अन्य जाति हेफताल (श्वेत हूण) ने गंधार पर चढाई की और बहुत से अग्निशालाओं, विहारों और मन्दिरों को धवस्त किया था। परन्तु किसी तरह से बामियान इनकी नज़रों से बचा रहा।

यह हेफताल जाति लगभग एक शताब्दी तक गंधार और उत्तर-पश्चिमी भारत में लूटमार करते रहे। इन्हें हिन्दू गुप्त राजाओं ने युद्ध में हराकर गंगा के मैदानी भागों में घुसने से रोक दिया था। इसी समय में गुप्त राजाओं का राजनैतिक और सामाजिक प्रभाव गंधार और आगे मध्य एशिया तक फैला था, जिसके कारण बामियान की संस्कृति पर भारतीय छाप पड़ी। गुप्त हिन्दु राजाओं का राजनैतिक और सामाजिक प्रभाव यवन, यूनानी, ईरानी और बाह्लीक संस्कृति पर पड़ा, जिसके कारण गंधार समाज और कला में एक नयी स्फूर्ति आई।

कुछ समय पश्चात 700 ई. में अरब खलिफों की सेना ने कंधार के गुप्त वंशी राजाओं को परास्त कर मुस्लिम शाखा की नींव अफ़गानिस्तान में डाली। परन्तु इसका प्रभाव बामियान की संस्कृति पर एक सौ वर्ष पश्चात ही पड़ा था। 920 ई. में बल्ख के तुर्क गवर्नर अल्पतगीन ने बामियान पर कब्जा कर मुस्लिम प्रभाव के अधीन किया था। यह वह काल था जब भारत के पड़ोस अफ़गानिस्तान और मध्य एशिया मुस्लिम प्रभाव के अधीन होकर बौद्ध विहारों, हिन्दु मन्दिरों और अग्निशालाओं को ध्वस्त कर रहे थे और भिक्षुओं और पुजारियों का नरसंहार हो रहा था। दूसरी ओर तिब्बत में बोन धर्म के स्थान पर बौद्ध धर्म की जड़ें सुदृढ़ होती जा रही थी।

अफ़गानिस्तान में मुस्लिम शासन को सुदृढ़ करने वाला सुबुग्तगीन था जिसने 11वीं शताब्दी ई. में गज़नी के सिंहासन पर कब्जा जमाया था।

बामियान के इतिहास में 1222 ई. का वर्ष खून और तबाही का था। जब मंगोल के विश्व विजेता

चंगेज़ खान ने शहर-ए-ज़ोहक के दुर्ग में अपने युवा पोते के मारे जाने के पश्चात बामियान की जनता से बदला लिया था। समूचे बामियान क्षेत्र की जनता को चुन-चुन कर मौत के घाट उतारा और उनकी बस्तियों और नगरों को अग्नि देव को सौंप दिया था। केवल बामियान में दो बुद्ध की विशाल मूर्तियां ही बची रहीं जो मूक दर्शक बन कर चंगेज़ खान को खून की होली खेलते देखती रहीं। इस प्रकार बामियान में बुद्ध संस्कृति का लोप हुआ। मुस्लिम शासन को स्थापित हुए प्राय: एक हज़ार वर्ष की लम्बी अवधि के गुजर जाने के पश्चात भी बामियान की ये दो मानव-निर्मित अद्वितीय कलाकृतियां समय और लोगों के थपेड़ों को झेलतीं अपने अस्तित्व को जीर्ण-शीर्ण अवस्था में बनाए रखने में सफल रहीं।

ज़हीर शाह के राज्यकाल में उन अफ़गान पूर्वजों द्वारा निर्मित बहुमूल्य और अद्वितीय कलानिधियों को भावी अफ़गान पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने के विचार से जून 1969 में भारत के साथ बामियान स्थित दो विशाल बुद्ध मूर्तियों के जीर्णोद्धार के लिए बातचीत हुई। इसके अन्तर्गत भारतीय कला संरक्षण के माहिरों ने इन अद्भुत कलाकृतियों का जीर्णोद्धार आरम्भ किया, जो पांच साल तक चला और इस पर भारत सरकार ने एक लाख डालर व्यय किए थे। शेष व्यय अफ़गानिस्तान की शाही सरकार ने किया। इस प्रकार अफ़गानिस्तान की शाही सरकार ने अपने पूर्वजों की बहुमूल्य कलाओं और स्मारकों पर गर्व करते हुए इनकी सुरक्षा पर ध्यान दिया था।

तालिबान और अल काइदा के मुजाहिद्दीन, जिनमें अधिकतर विदेशी मुस्लिम कट्टरपंथी थे, की दृष्टि में हर गैर मुस्लिम वस्तु को धर्म की राह पर रुकावट मान कर नष्ट करने पर तुल गए। उनको अफ़गानिस्तान के अतीत की उपलब्धियों से क्या लेना होगा? यही कारण है कि बामियान की दो विशाल बुद्ध मूर्तियों पर तोपें दागी गईं और समूल नष्ट करने की चेष्टा की गई।

अब तालिबान और उनके स्वामियों को एक अन्य फतूर ने ग्रस्त किया - वह था अमेरिका के विरुद्ध जिहाद का। 11 सितम्बर के दिन अलकाइदा और तालिबान के स्वामियों ने अमेरिका में न्यूयॉर्क स्थित वहां की सबसे ऊंची दो इमारतों (विश्व व्यापार केन्द्र) से हवाई जहाज़ों को टकरा कर धराशायी कर दिया। उनकी दृष्टि में ये दो ऊंची इमारतें भी बामियान की दो विशाल बुद्ध मूर्तियां ही थीं। दो विशाल बुद्ध मूर्तियों को नष्ट करने पर तालिबान और अलकाइदा का बाह्य रूप से कुछ विनाश नहीं हुआ था, परन्तु अमेरिका के दो ऊंचे भवनों को ध्वस्त करने का फल उन्हें भुगतना पड़ा। वह भी उनके दो प्यारों (पोषक) के हाथों, अर्थात अमेरिका और पाकिस्तान द्वारा। अब अफ़गानिस्तान से तालिबान का अन्धकारमय और भयानक राज का दौर समाप्त हो चुका है और शान्ति और सद्भावना से भरपूर नूतन सूर्य से जगमगाते अफ़गानिस्तान में नई राष्ट्रवादी सरकार का गठन हुआ है। आशा की जाती है कि अफ़गानिस्तान की नई सरकार, जिसमें पूर्व शासक ज़हीर शाह का भी हाथ है, यूनेस्को की सहायाता से दोबारा जगत प्रसिद्ध बामियान की अद्भुत कला धरोहरों का जीर्णोद्धार करेगी। इसमें भारत भी अपना दायित्व निभाएगा, ताकि बामियान की यह विश्व धरोहर फिर से अपनी पूर्व ख्याति को प्राप्त कर अफ़गानिस्तान के अतीत की साक्षी बने।

तालिबान के पतन से पाकिस्तान की कश्मीर पर कुनीति को धक्का पहुंचा है, जिसमें अफ़गानिस्तान से तालिबान और अलकाइदा के उग्रवादियों को कश्मीर में भेजकर अशान्ति फैलाकर भारत को क्षति पहुंचाना था। कश्मीर समस्या को लेकर भारत और पड़ोसी पाकिस्तान के मध्य तीन बार पूर्ण रूपेण युद्ध हो चुका है। और हर बार भारतीय सेनाओं के सामने पाकिस्तानी सेनाओं को मुंह की खानी पड़ी। यह खेद का विषय है कि पाकिस्तान इन पराजयों से भी सबक नहीं सीख सका है। पाकिस्तान अपनी विदेश नीति में अफ़गानिस्तान में चारों खाने चित्त हुआ है। इसी प्रकार इस बार कश्मीर नीति में भी मुंह के बल गिरेगा, इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती।

अन्त में मैं अवश्य लिखना चाहूंगा कि यदि मैं ह्यूनचाङ (सातवीं शताब्दी) के समय यह लेख लिख रहा होता, तो अवश्य इन पंक्तियों को भी जोड़ देता कि अफ़गानिस्तान में तालिबान और अलकाइदा व उनके स्वामी मुल्ला उमर और ओसामा बिन लादेन का अमेरिकी सेनाओं द्वारा सर्वनाश होने का मुख्य कारण बामियान के प्राचीन और प्रतिष्ठित दो विशाल बुद्ध देव की मूर्तियों को ध्वस्त करने का प्रतिफल है। अमेरिका स्थित 'विश्व व्यापार केन्द्र' के दो गगन चुम्बी भवन भी इन दो विशाल मूर्तियों के आधुनिक प्रतीक थे।□

मरुभूमि विकास परियोजना लाहुल-स्पीति

- जल-जंगल-ज़मीन
- बचेगा जीवन बचे ये तीन

मरुभूमि विकास परियोजना लाहुल एवम् स्पीति 1-4-1995 से प्रारम्भ

- मुख्य उद्देश्य - पारिस्थितिक संतुलन निर्माण
- लोगों का - लोगों के लिए - लोगों के द्वारा

लोक समस्याओं के निवारण हेतु लोक सहभागी प्रयास

- स्वावलम्बी एवं चिरस्थायी विकास

कुल जलागम क्षेत्र - 136

कुल क्रियान्वयन ऐजन्सीयां (पी.आई.ए.) - 7

	चरण 1	चरण 5	चरण 6	चरण 7	कुल
ज़िला कृषि अधिकारी	04	20	2	0	26
ज़िला उद्यान अधिकारी	02	20	3	0	25
अधिशाषी अभियन्ता, जन स्वास्थ्य एवं सिंचाई	04	0	05	0	09
खण्ड विकास अधिकारी	0	0	05	0	05
वन मण्डल अधिकारी	13	0	05	0	18
ज़िला परयिोजना/ग्रामीण विकास अधिकारी	1	0	0	10	11
अति० उपायुक्त, काज़ा, स्पीति	24	8	20	35	87
	48	48	40	45	181

कुल प्राप्ति 14.86 करोड़

कुल व्यय 13.88 करोड़ (11/2001 तक)

उपचारिकता क्षेत्र / विकसित क्षेत्र

1. भू-संसाधान विकास के अन्तर्गत 9330.74 हैक्टेयर
2. जल-संसाधान के अन्तर्गत 3001.00 हैक्टेयर
3. वनीकरण एवं चरागाह के अन्तर्गत 6163.00 हैक्टेयर

कुल मानव दिवस सृजित 4.75 लाख (श्रम दिवस)

सहयोग आपका - विश्वास हमारा

डी.डी.पी. का नारा - स्वावलम्बी लाहुल सारा

जिला परियोजना अधिकारी,
लाहुल, स्थान केलंग

उपायुक्त एवं अध्यक्ष
जिला ग्रामीण विकास अभिकरण
लाहुल एवं स्पीति, स्थान केलंग